प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
और—
छगनमल बाकलीवाल
मालिक—
जैन ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग-बम्बई।

प्रिंटर—
मंगेशराव नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
४३४ ठाकुरद्वार-बम्बई।

श्रीवीतरागाय नमः ।

द्रव्यसंग्रह ।

(अन्वय अर्थसहित।)

दोहा ।

वंदे द्रव्य जीवादि जिन, वंदे जिन्हें सुरेश ।
तिन जिनवर वृषभेशको, नाऊं सीस हमेश ॥ १ ॥

मूलग्रन्थकर्ताका मङ्गलाचरण ।

प्राकृतगाथा ।

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

संस्कृतच्छाया ।

जीव अजीवं द्रव्यं जिनवरवृषभेण येन निर्दिष्टम् ।
देवेन्द्रवृन्दवन्द्यं वन्दे तं सर्वदा शिरसा ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(जेण=येन) जिस (जिणवरवसहेण=जिनवरवृषभेण) ऋषभ जिनेश्वरने (जीवमजीवं=जीवम् अजीवम्) जीव और अजीव (दव्वं=द्रव्य) द्रव्यका (णिद्दिट्ठं=निर्दिष्ट) वर्णन किया है और (देविंदविंदवंदं=देवेन्द्रवृन्दवन्द्यम) जो देवोंके इन्द्रसमूह-कर वन्दनीय है (तं=तम) उस आदिनाथ भगवानको मै (सव्वदा=सर्वदा । सदैव (सिरसा शिरसा) मस्तक नवाकर (वंदे वन्दे) नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ —जिस ऋषभनाथ भगवानने जीव अजीव द्रव्योंका स्व-

अन्वयार्थ—(ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (तिक्काले=त्रिकाले) तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान कालोंमें (इंदिय=इन्द्रियम्) इन्द्रिय (बलं=बलम्) बल (आउ=आयुः) आयु (य=च) और (आणपाणो=आनप्राणः) श्वासोच्छ्वास [एते] ये (चदुपाणा=चतुःप्राणाः) चार प्राण [सन्ति] हैं। (दु=तु) और (णिच्छयणयदो=निश्चयनयतः) निश्चयनयसे (जस्स=यस्य) जिसका (चेदणा=चेतना) एक चेतना ही प्राण है (सो=सः) सो (जीवो=जीवः) जीव है ॥ ३ ॥

भावार्थ—व्यवहारनयकी अपेक्षा पांच इंद्रियें, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस प्रकार दशप्राण जिसके हों, वह जीव है और निश्चयनयसे जिसके चेतना (स्वस्वरूप और परस्वरूपका ज्ञान) प्राण है उसे ही जीव जानना ॥ ३ ॥

२। उपयोग अधिकार और दर्शनोपयोगके भेद।—

उवओगो दुवियप्पो दंसणं णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥

उपयोग द्विविकल्प दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्धा।
चक्षुः अचक्षुः अवधि दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ (उवओगो=उपयोग) उपयोग (दुवियप्पो=द्विविकल्प) दो प्रकारका है (दंसणं=दर्शनं) एक तो दर्शनोपयोग (य=च) और (णाणं=ज्ञानं) दूसरा ज्ञानोपयोग। इनमेंसे दर्शन...

रूप वर्णन किया है, और जो शत इन्द्रोंकर वन्दनीय है उनको मैं नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

जीवद्रव्यके स्वरूपको ज्ञात करानेवाले नव अधिकारोंके नाम—

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

जीवः उपयोगमयः अमूर्तिः कर्ता स्वदेहपरिमाणः ।
भोक्ता संसारस्थः सिद्धः स विस्रसा ऊर्ध्वगतिः ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(जीवो=जीवः) जो प्राणोंकर जीवे (उवओगमओ=उपयोगमयः) उपयोगमयी (अमुत्ति=अमूर्तिः) मूर्तिरहित (कत्ता=कर्ता) कर्मोंका कर्त्ता (सदेहपरिमाणो=स्वदेहपरिमाणः) नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुए अपने शरीरके बराबर [छोटा या बड़ा] रहनेवाला (भोत्ता=भोक्ता) कर्मफलका भोगनेवाला (संसारत्थो=संसारस्थः) संसारी (सिद्धो=सिद्धः) सिद्ध है (सो=सः) वही (विस्ससोड्ढगई=विस्रसा ऊर्ध्वगतिः) स्वभावसे ऊर्द्ध्वगतिवाला है ॥२॥

भावार्थ—ये नव प्रकार जिसमें पाये जायँ, वही जीव है ॥२॥

अब बारह गाथाओंसे इन नव अधिकारोंका वर्णन करते हैं।

१। उनमेंसे प्रथम जीवका स्वरूप कहते हैं;—

तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥

त्रिकाले चतु प्राणाः इन्द्रियं बलं आयु आनप्राणः च ।
व्यवहारात् सः जीवः निश्चयनयत. तु चेतना यस्य ॥ ३ ॥

---

(१) भवणालयचालीसा विंतरदेवाण होंति बत्तीसा ।
कप्पामरचउवीसा चंदो सूरो णरो तिरिओ ॥ १ ॥
[यह गाथा मूलग्रन्थकी नहीं है]

अर्थ—भवनवासियोंके ४०, व्यन्तरोंके ३२, कल्पवासियोंके २४, चन्द, सूर्य, चक्रवर्ती और सिंह, इस तरह सब मिलकर १०० ।

अन्वयार्थ—(ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (तिक्काले=त्रिकाले) तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान कालोंमें (इं-दिय=इन्द्रियम्) इन्द्रिय (बलं=बलम्) बल (आउ=आयुः) आयु (च=च) और (आणपाणो=आनप्राणः) श्वासोच्छ्वास [एते] ये (चदुपाणा=चतुःप्राणाः) चार प्राण [सन्ति] हैं। (दु=तु) और (णिच्चयणयदो=निश्चयनयतः) निश्चयनयसे (जस्स=यस्य) जिसका (चेदणा=चेतना) एक चेतना ही प्राण है (सो=सः) सो (जीवो=जीवः) जीव है ॥ ३ ॥

भावार्थ—व्यवहारनयकी अपेक्षा पांच इंद्रियें, तीन बलें, आयु और श्वासोच्छ्वास इस प्रकार दशप्राण जिसके हों, वह जीव है और निश्चयनयसे जिसके चेतना (स्वात्मरूप और परात्मरूपका ज्ञान) प्राण है उसे ही जीव जानना ॥ ३ ॥

२। उपयोग अधिकार और दर्शनोपयोगके भेद,-

उवओगो दुवियप्पो दंसणं णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥

उपयोगः द्विविधः दर्शनं ज्ञानं च दर्शनं चतुर्धा।
चक्षुः अचक्षुः अवधि दर्शनं अथ केवलं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ (उवओगो=उपयोगः) उपयोग (दुवियप्पो=द्विविकल्पः) दो प्रकारका है (दंसणं=दर्शनं) एक तो दर्शनोपयोग (च=च) और (णाणं=ज्ञानं) दूसरा ज्ञानोपयोग। इनमेंसे (दंसणं=दर्शनं) दर्शनोपयोग (चदुधा=चतुर्धा) चार प्रकार, (चक्खु चक्षु

जानना (चक्खुअचक्खुओहीदंसणं=चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनम्
पहला चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन दूसरा तीसरा अवधिदर्शन
(अध=अथ) और (केवलं=केवलं) चौथा केवलदर्शन ॥ ४ ॥

ज्ञानोपयोगके आठ भेद;–

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥

ज्ञानं अष्टविकल्पं मतिश्रुतावधयः अज्ञानज्ञानानि ।
मनःपर्ययः केवलं, अपि प्रत्यक्षपरोक्षभेदं च ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(मदिसुदओही अणाणणाणाणि=मतिश्रु
ताऽवधयः अज्ञान-ज्ञानानि) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, अवि
अज्ञान, मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान (अवि=अपि
और (मणपज्जय=मनःपर्ययः) मनःपर्यय तथा (केवलं=केवलं
केवलज्ञान, इसप्रकार (णाणं=ज्ञानम्) ज्ञानोपयोग (अ
वियप्पं=अष्टविकल्पं) आठ भेद रूप है (च=च) और फि
यह ज्ञानोपयोग (पच्चक्खपरोक्खभेयं=प्रत्यक्षपरोक्षभेदं) प्रत्य
परोक्ष भेदसे दो प्रकारका भी है ॥ ५ ॥

भावार्थ—ज्ञानोपयोग आठ प्रकारका है और ये ही आठों प्रत्य
परोक्षके भेदसे दोप्रकारके भी होते हैं ॥ ५ ॥

प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानके भेद ।

[१] मइ सुय परोक्खणाणं ओही मण होइ वियलपच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा अणोवमं होइ सयलपच्चक्खं ॥ १ ॥
मति, श्रुत परोक्षज्ञानं अवधि, मन, भवति विकलप्रत्यक्षम् ।
केवलज्ञान च तथा अनुपम भवति सकलप्रत्यक्षम् ॥ १ ॥

अन्वयार्थ-[मइ=मति] मतिज्ञान [सुय=श्रुत] श्रुतज्ञान ये

ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ही जीवद्रव्यका लक्षण है:—

अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने सामान्यं जीवलक्षणं भणितम् ।
व्यवहारात् शुद्धनयात् शुद्धं पुनः दर्शनं ज्ञानम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(सामण्णं=सामान्यं) सामान्यरूपसे (जीवलक्खणं=जीवलक्षणम्) जीवका लक्षण (ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (अट्ठचदुणाणदंसण=अष्टचतुर्ज्ञानदर्शने) आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन (भणियं=भणितम्) कहा गया है (पुण=पुनः) और (सुद्धणया=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चयनयसे (सुद्धं=शुद्धम्) शुद्ध (दंसणं=दर्शनम्) दर्शन और (णाणं=ज्ञानम्) शुद्ध ज्ञान जीवका लक्षण है ॥ ६ ॥

३। जीवका अमूर्तित्वअधिकार—

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

(परोक्खणाणं=परोक्षज्ञानम्) परोक्षज्ञान है । (ओही=अवधिः) अवधि ज्ञान (च=च) और (मण=मनः) मनःपर्ययज्ञान (वियलपच्चक्खं=विकलप्रत्यक्षम्) एकदेशप्रत्यक्ष (होइ अपि) है । (तहा=तथा) तथा (केवलणाणं=केवलज्ञानम्) केवलज्ञान (अणोवमं=अनुपमं) जिसकी बराबरीका कोई भी नहीं ऐसा (सयलपच्चक्खं सकलप्रत्यक्षं) सर्वदेशप्रत्यक्ष (होइ-

वर्णाः रसा पञ्च गन्धौ द्वौ स्पर्शा अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो सन्ति अमूर्तिः ततः व्यवहारात् मूर्तिः बंधतः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ-(णिच्छया=निश्चयात् , शुद्ध निश्चयनयसे (जीवे=जीवे) जीवद्रव्यमें (वण्ण रस पञ्च=वर्णाः रसाः पञ्च) पांच पांच प्रकारके रस (दो=द्वौ) दो प्रकारका (गंधा=गन्धौ) गंध (अट्ठ फासा=अष्टौ स्पर्शाः) आठ प्रकारके स्पर्श (णो=नो नहीं (संति=सन्ति) हैं (ततो=ततः) इस कारणसे जीव (मुत्ति=अमूर्तिः) अमूर्तिक है और (ववहारा=व्यवहारात्) वहारनयसे (बंधादो=बन्धतः) कर्मबन्धसहित होनेके कारण (त्ति=मूर्तिः) मूर्तिक है ।

भावार्थ—जीवद्रव्यमें पांच प्रकारके (श्वेत, पीत, नील, अरु कृष्ण) वर्ण; पांच प्रकारके (तिक्त, कटुक, कषायला, खट्टा, मीठ रस; दो प्रकारके (सुगंध, दुर्गंध) गंध; और आठ प्रकारके (श उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर, हलका, भारी) स्पर्श; इन २० मे एक भी गुण नहीं है, इस कारण निश्चयनयसे (वास्तवमें) तो अ अमूर्तिक है परंतु व्यवहार नयसे (कर्मबंध शरीरादि) सहित होने कारण मूर्तिक भी कहा जाता है ॥ ७ ॥

४। कर्त्ता अधिकार;—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिचयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥

पुद्गलकर्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावनाम् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(ववहारदो दु=व्यवहारतस्तु) व्यवहारनयसे (आदा=आत्मा) जीव (पुग्गलकम्मादीणं=पुद्गलकर्मादीनाम्

पुद्गलकर्म ज्ञानावरणादि व शरीरादिका (कत्ता=कर्ता) कर्ता है और (णिच्चयदो=निश्चयतः) अशुद्ध निश्चयनयसे (चेदणकम्माणं=चेतनकर्मणाम्) रागादिक भावकर्मोंका कर्ता है; परन्तु (सुद्धणया=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चयनयसे केवल मात्र (सुद्धभावाणं=शुद्धभावानाम्) अपने शुद्ध चैतन्य भावोंका [शुद्धज्ञानदर्शनका] ही कर्ता है ॥ ८ ॥

५। भोक्ता अधिकार,—

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(आदा=आत्मा) जीव (ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (सुहदुक्खं=सुखदुःखं) सुखदुःखरूप (पुग्गलकम्मप्फलं=पुद्गलकर्मफलम्) पौद्गलिक कर्मोंके फलको (पभुंजेदि=प्रभुंक्ते) भोगता है और (णिच्चयणयदो=निश्चयनयत) शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा (आदस्स=आत्मनः) अपने (चेदणभावं=चेतनभावं) शुद्ध दर्शनज्ञानोपयोग भावोंको (खु=खलु) ही भोगता है ॥ ९ ॥

६। स्वदेहपरिमाणाधिकार,—

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ॥ १० ॥

वर्णाः रसाः पञ्च गंधौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो संति अमूर्तिः ततः व्यवहारात् मूर्तिः बंधतः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(णिच्छया=निश्चयात्) शुद्ध निश्चयनयसे (जीवे=जीवे) जीवद्रव्यमें (वण्ण रस पञ्च=वर्णाः रसाः पञ्च) पांच वर्ण, पाच प्रकारके रस (दो=द्वौ) दो प्रकारका (गंधा=गन्धौ) गंध और (अट्ठ फासा=अष्टौ स्पर्शाः) आठ प्रकारके स्पर्श (णो=नो) नहीं (संति=सन्ति) हैं (ततो=ततः) इस कारणसे जीव (अमुत्ति=अमूर्तिः) अमूर्तिक है और (ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (बंधादो=बन्धतः) कर्मबन्धसहित होनेके कारण (मुत्ति=मूर्तिः) मूर्तिक है ।

भावार्थ—जीवद्रव्यमें पांच प्रकारके (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण) वर्ण; पांच प्रकारके (तिक्त, कटुक, कषायला, खट्टा, मीठा) रस; दो प्रकारके (सुगंध, दुर्गंध) गंध; और आठ प्रकारके (शीत उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर, हलका, भारी) स्पर्श; इन २० मेंसे एक भी गुण नहीं है, इस कारण निश्चयनयसे (वास्तवमें) तो जीव अमूर्तिक है परंतु व्यवहार नयसे (कर्मबंध शरीरादि) सहित होनेके कारण मूर्तिक भी कहा जाता है ॥ ७ ॥

४। कर्त्ता अधिकार,—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥

पुद्गलकर्मादीनां कर्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(ववहारदो दु=व्यवहारतस्तु) व्यवहारनयसे तो (आदा=आत्मा) जीव (पुग्गलकम्मादीणं=पुद्गलकर्मादीनाम्)

पुद्गलकर्म ज्ञानावरणादि व शरीरादिका (कत्ता=कर्ता) कर्ता है और (णिच्चयदो=निश्चयतः) अशुद्ध निश्चयनयसे (चेदणकम्माणं=चेतनकर्मणाम्) रागादिक भावकर्मोंका कर्ता है; परन्तु (सुद्धणया=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चयनयसे केवल मात्र (सुद्धभावाणं=शुद्धभावानाम्) अपने शुद्ध चैतन्य भावोंका [शुद्धज्ञानदर्शनका] ही कर्ता है ॥ ८ ॥

५। भोक्ता अधिकार।—

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते ।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(आदा=आत्मा) जीव (ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (सुहदुक्खं=सुखदुःखं) सुखदुःखरूप (पुग्गलकम्मप्फलं=पुद्गलकर्मफलम्) पौद्गलिक कर्मोंके फलको (पभुंजेदि=प्रभुंक्ते) भोगता है और (णिच्चयणयदो=निश्चयनयतः) शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा (आदस्स=आत्मनः) अपने (चेदणभावं=चेतनभावं) शुद्ध दर्शनज्ञानोपयोग भावोंको (खु=खलु) ही भोगता है ॥ ९ ॥

६। स्वदेहपरिमाणत्वाधिकार।—

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अणुगुरुदेहप्रमाणः उपसंहारप्रसर्पतः चेतयिता ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयात् असंख्यदेशो वा ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—(ववहारा [illegible] [illegible] चे-

वर्णाः रसाः पञ्च गंधौ द्वौ स्पर्शाः अष्टौ निश्चयात् जीवे ।
नो संति अमूर्तिः ततः व्यवहारात् मूर्तिः बंधतः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(णिच्छया=निश्चयात्) शुद्ध निश्चयनयसे (जीवे=जीवे) जीवद्रव्यमें (वण्ण रस पञ्च=वर्णाः रसाः पञ्च) पांच वर्ण, पांच प्रकारके रस (दो=द्वौ) दो प्रकारका (गंधा=गन्धौ) गंध और (अट्ठ फासा=अष्टौ स्पर्शाः) आठ प्रकारके स्पर्श (णो=नो) नहीं (संति=सन्ति) हैं (तदो=ततः) इस कारणसे जीव (अमुत्ति=अमूर्तिः) अमूर्तिक है और (ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (बंधादो=बन्धतः) कर्मबन्धसहित होनेके कारण (मुत्ति=मूर्तिः) मूर्तिक है ।

भावार्थ—जीवद्रव्यमें पांच प्रकारके (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण) वर्ण; पांच प्रकारके (तिक्त, कटुक, कषायला, खट्टा, मीठा) रस; दो प्रकारके (सुगंध, दुर्गंध) गंध; और आठ प्रकारके (शीत उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर, हलका, भारी) स्पर्श; इन २० मेंसे एक भी गुण नहीं है, इस कारण निश्चयनयसे (वास्तवमें) तो जीव अमूर्तिक है परंतु व्यवहार नयसे (कर्मबंध शरीरादि) सहित होनेके कारण मूर्तिक भी कहा जाता है ॥ ७ ॥

४ । कर्ता अधिकार;—

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥

पुद्गलकर्मादीनां कर्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः ।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(ववहारदो दु=व्यवहारतस्तु) व्यवहारनयसे तो (आदा=आत्मा) जीव (पुग्गलकम्मादीणं=पुद्गलकर्मादीनाम्)

पुद्गलकर्म ज्ञानावरणादि व शरीरादिका (कत्ता=कर्त्ता) कर्त्ता है और (णिच्छयदो=निश्चयतः) अशुद्ध निश्चयनयसे (चेदणक-—तनकर्मणाम्) रागादिक भावकर्मोंका कर्त्ता है; परन्तु (सुद्धणया=शुद्धनयात्) शुद्ध निश्चयनयसे केवल मात्र (सुद्ध-—भावानाम्) अपने शुद्ध चैतन्य भावोंका (शुद्धज्ञा- १४) ही कर्त्ता है ॥ ८ ॥

५। भोक्ता अधिकार;—

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गलकर्मफलं प्रभुङ्क्ते ।
आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ—(आदा=आत्मा) जीव (ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (सुहदुक्खं=सुखदुःखं) सुखदुःखरूप (पुग्गल-कम्मप्फलं=पुद्गलकर्मफलम्) पौद्गलिक कर्मोंके फलको (पभुंजेदि=प्रभुङ्क्ते) भोगता है और (णिच्छयणयदो=निश्चयनयतः) शुद्ध-निश्चयनयकी अपेक्षा (आदस्स=आत्मनः) अपने (चेदणभावं=चेतनभावं) शुद्ध दर्शनज्ञानोपयोग भावोंको (खु=खलु) ही भोगता है ॥ ९ ॥

६। स्वदेहपरिमाणाधिकार;—

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अणुगुरुदेहप्रमाण उपसंहारप्रसर्पाभ्यां चिद्रूपः ।
असमुद्घातात् व्यवहारात् निश्चयनयतः असंख्यदेशो वा ॥ १० ॥

अन्वयार्थ —(ववहारा =व्यवहारात्)　=व्यवहारनयसे　चे-

दा=चिदात्मा) चैतन्यस्वरूप जीव (उवसंहारप्पसप्पदो=उपसंहारप्रसर्पाभ्याम्) शरीरनामकर्मजनित संकोचविस्तारगुणके कारण (असमुहदो=असमुद्घातात्) समुद्घातके सिवाय अन्य सब अवस्थाओंमें (अणुगुरुदेहपमाणो=अणुगुरुदेहप्रमाणः) छोटे या बड़े प्राप्त हुए शरीरके प्रमाण ही रहता है (वा=वा) और (णिच्चयणयदो=निश्चयनयतः) निश्चयनयसे (असंखदेसो=असंख्यदेशः) लोककी बराबर असंख्यप्रदेशी है ॥ १० ॥

भावार्थ—निश्चयनयसे तो जीव लोककी बराबर असंख्यात प्रदेशोंवाला है परन्तु व्यवहारनयसे सात प्रकारके समुद्घातके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें नामकर्मके उदयसे जितना बड़ा शरीर पाता है, उसके प्रमाण ही रहनेवाला कहा जाता है ॥

७। संसारी अधिकार,—

पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥ ११ ॥

पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः विविधस्थावरैकेन्द्रियाः
द्विकत्रिकचतुःपञ्चाक्षाः त्रसजीवाः भवन्ति शङ्खादयः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—(पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी=पृथिवीजलतेजोवायुवनस्पतयः) पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक,

---

१ आकाशके जितने क्षेत्रको पुद्गलका एक अविभागी परमाणु रोकता है, उतने आकाशके भेदको एक प्रदेश कहते हैं। (देखो २७ वीं गाथा में।)

२ कषाय वेदनादि सात कारणोंके उपस्थित होनेपर जीवके प्रदेशोंके मूल शरीरको न छोड़कर शरीरसे बाहर जानेको समुद्घात कहते हैं। वे सात कारण ये हैं-वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहार, केवल।

स्पतिकायिक ये सब (विविहथावरेइंदी=त्रिविधस्थावरैकेन्द्रियाः) रूपप्रकारके स्थावर जीव एकेन्द्रिये[1] हैं और (संखादी=शंखादयः) आदिके[2] (विगतिगचदुपंचक्खा=द्वित्रिचतुःपञ्चाक्षाः) द्वीन्द्रिय[3] न्द्रियें[4] चतुरिन्द्रिय[5] पंचेन्द्रिय[6] ये सब (तसजीवा=त्रसजीवाः) त्रस तिके जीव (होंति=भवन्ति) होते हैं ॥ ११ ॥

उन्हीं त्रसस्थावरोंको १४ जीवसमासोंसे प्रकट करते हैं;—

समणा अमणा णेया पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥

समनस्का अमनस्काः ज्ञेयाः पञ्चेन्द्रियाः निर्मनस्काः परे सर्वे ।
बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाः सर्वे पर्याप्ता इतरे च ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(पंचेंदिय=पञ्चेन्द्रियाः) पञ्चेन्द्रियजीव (समणा=समनस्काः) मनसहित संज्ञी तथा (अमणा=अमनस्काः) मनरहित असंज्ञी (णेया=ज्ञेयाः) जानने और (परे=परे) बाकीके (सव्वे=सर्वे) सब जीव (णिम्मणा=निर्मनस्काः) मनरहित असंज्ञी जानने, इनमेंसे (एइंदी=एकेन्द्रियाः) एकेन्द्रिय जीव (बादरसुहमा=बादरसूक्ष्माः) बादर तथा सूक्ष्म दो प्रकारके हैं । (सव्वे

१ एक मात्र स्पर्श (त्वक्) इन्द्रियसहित जीव ।

२ शंख, कौड़ी, भौंरा तथा मनुष्य या पशु-पक्षी आदिसे ।

३ स्पर्शन रसना और इन दो इन्द्रियोंवाले जीव ।

४ स्पर्शन रसना और नासिका इन तीन इन्द्रियोंवाले जीव ।

५ स्पर्शन रसना नासिका और चक्षु इन चार इन्द्रियोंवाले जीव ।

६ स्पर्शन रसना नासिका चक्षु [illegible] हों उनको पंचेन्द्रिय कहते हैं ।

शाओंको न जाकर जहां जन्मलेते हैं वहां दिग्गामी ही (एक, या तीन मोड़ा खाकर, एक दो या तीन समयके भीतर २) चले हैं ॥ १ ॥ [यह गाथा द्रव्यसंग्रहकी नहीं है]

[चौदहवीं गाथासे जीवका ऊर्ध्वगमनस्वभाव स्पष्टतया प्रगट नहीं होता और इस गाथामें हेतुपूर्वक ऊर्ध्वगमनत्व प्रगट किया गया है। इसकारण विद्यार्थियोंको विशेष उपयोगी समझ हमने इसे सान्वयार्थ और टिप्पणीसहित लिखी है]

इति जीवस्य नवाधिकाराः समाप्ताः ।

अजीवद्रव्योंके नाम और भेदोंका वर्णन —

अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

अजीवः पुनः ज्ञेयः पुद्गलः धर्मः अधर्मः आकाशम् ।
कालः पुद्गलः मूर्तः रूपादिगुणः अमूर्ताः शेषाः तु ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ—(पुण=पुनः) फिर (पुग्गल=पुद्गलः) पुद्गल (धम्मो=धर्मः) धर्म (अधम्म=अधर्मः) अधर्म (आयासं=आकाशम्) आकाश (कालो=कालः) काल, ये पांच द्रव्य (अज्जीवो=अजीवः) अजीव–जड़ (णेओ=ज्ञेयः) जानने चाहिये। इनमेंसे (पुग्गल=पुद्गल) पुद्गलद्रव्य (रूवादिगुणो=रूपादिगुणः) रूप रस गन्ध स्पर्श गुणवाला (मुत्तो=मूर्तः) मूर्तिक है (दु=तु) और (सेसा=शेषाः) बाकीके चार द्रव्य धर्म अधर्म काल और आकाश (अमुत्ति=अमूर्ताः) अमूर्तिक हैं ॥ १५ ॥

पुद्गलद्रव्यकी विभावव्यंजनपर्यायें —

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

शब्दः बंधः सूक्ष्मः स्थूलः संस्थानभेदतमश्छाया।
उद्योतातपसहिता पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(सद्दो=शब्दः) शब्द (बंधो=बन्धः) ...
तथा नोकर्मादि द्रव्यकर्मोंका बन्ध (सुहुमो=सूक्ष्मः) सू
(थूलो=स्थूलः) स्थूल (संठाणभेदतमछाया=संस्थानभे
मश्छायाः) आकार, खंड, अन्धकार छाया (उज्जोदादवस
या=उद्योतातपसहिताः) उद्योत [प्रकाश] और आतप [उष्ण
सहित ये सब (पुग्गदव्वस्स=पुद्गलद्रव्यस्य) पुद्गलद्र
(पज्जाया=पर्यायाः) पर्यायें हैं[1] ॥ २६ ॥

धर्मद्रव्यका स्वरूप;—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई

गतिपरिणतानां धर्मः पुद्गलजीवानां गमनसहकारी।
तोयं यथा मत्स्यानां अगच्छतो नैव सः नयति ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ—(जह=यथा) जैसे (गइपरिणयाण=
णतानाम्) गमन करनेमें परिणत हुए (मच्छाणं=म
मच्छोंको (गमणसहयारी=गमनसहकारी) गमनका
(तोयं=तोयम्) जल है, उसी प्रकारसे (गइपरिणयाण=
परिणतानाम्) गमन करनेमें परिणमते हुए (पुग्गजीवाण=पु
द्गलजीवानाम्) पुद्गल और जीवोंको (गमणसहयारी=गमनसह
कारी) गमनका सहकारी (धम्मो=धर्मः) धर्म द्रव्य है। औ

---

१ द्रव्योंकी अवस्थाका पलटन पर्याय कहाती है। (ये सिर्फ व्यञ्जन पर्यायें हैं अर्थपर्याय नहीं।)

–मः) यह धर्मद्रव्य [तथा जल] (अच्छंता=अगच्छताम्) र हुए जीवोंको [तथा मच्छोंको] (णेव=नैव) नही (णेई=ति) चलाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—यदि मछलीको ठहरे रहनेकी इच्छा होती है, तो जल ा जबर्दस्ती नही चलाता है। इसी प्रकार धर्मद्रव्य भी ठहरे हुए व पुद्गलोंको प्रेरणा करके नही चलाता है; किन्तु चलते हुओंको ासीनतासे मदद करता है ॥ १७ ॥

अधर्मद्रव्यका स्वरूप,—

ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥

स्थानयुक्तानां अधर्मः पुद्गलजीवानां स्थानसहकारी ।
छाया यथा पथिकानां गच्छतां नैव सः धरति ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—(जह=यथा) जैसे (छाया=छाया) छाया (पहियाणं=पथिकानां) पथिकजनोंको ठहरनेमें सहायक है इसी- (र जो (ठाणजुदाण=स्थानयुतानाम्) ठिहरे हुए (पुग्गल- ीव-ाण=पुद्गलजीवानाम्) पुद्गल और जीवोंको (ठाणसहयारी= स्थानसहकारी) ठहरनेमें सहायक हो वह (अधम्मो=अधर्मः) धर्मद्रव्य है। किन्तु (सो स) वह अधर्मद्रव्य (गच्छंता=ग- च्छताम्) चलते हुए जीव पुद्गलोंको (णेव नैव) कदापि नहीं धरई धरति) ठहराता है ॥ १८ ॥

आकाशद्रव्यका स्वरूप,—

अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ।

अवकाशदानयोग्यं जीवादीनां विजानीहि आकाशम् ।
जैनं लोकाकाशं अलोकाकाशमिति द्विविधम् ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ—(जीवादीणं=जीवादीनाम्) जीवादिक द्रव्
(अवगासदाणजोग्गं=अवकाशदानयोग्यम्) अवकाश दान देने
(जेणं=जैनं) जिनेन्द्र भगवानद्वारा भाषित (आयासं=आका
आकाश द्रव्य (वियाण=विजानीहि) जानो, और वह आकाश
(लोगागासं=लोकाकाशम्) लोकाकाश तथा (अल्लोगागा
(अलोकाकाशम्) अलोकाकाश (इदि=इति) इसप्रकार (दुवि
द्विविधं) दो भेदरूप है ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो समस्त पदार्थोंको अवकाश [स्थानदान] देत
अर्थात् जिस जगहपर समस्तद्रव्योंके युगपत् रहनेकी योग्यता है उस
जिनमतमें आकाशद्रव्य कहते हैं ॥ १९ ॥

लोकाकाश अलोकाकाशका विभाग,—

धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥

धर्माधर्मौ कालः पुद्गलजीवाः च सन्ति यावतिके ।
आकाशे स लोकः ततः परतः अलोकः उक्तः ॥ २० ॥

अन्वयार्थ—(जावदिये=यावतिके) जितने (आयासे=आकाशे) आकाशमें (धम्माधम्मा=धर्माधर्मौ) धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य (कालो=कालः) कालद्रव्य (य=च) और (पुग्गलजीवा=पुद्गलजीवाः) पुद्गल तथा जीवद्रव्य (संति=सन्ति) हैं (सो=सः) वह (लोगो=लोकः) लोकाकाश है, और (तत्तो=ततः) उससे (परदो=परतः) परे (अलोगुत्तो=अलोकः उक्तः) अलोकाकाश कहा है ॥ २० ॥

भावार्थ—आकाशके दो भेद हैं, एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। जहां जीव, अजीव, धर्म, अधर्म और काल ये पांच पाये जाते हैं वह लोकाकाश है, और जहां ये कुछ नहीं हैं, केवल आकाश ही आकाश है, वह अलोकाकाश है।

कालद्रव्यका लक्षण ।

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥ २१ ॥

द्रव्यपरिवर्तनरूपः यः सः कालः भवेत् व्यवहारः ।
परिणामादिलक्ष्यः वर्तनालक्षणः च परमार्थः ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ—(जो=यः) जो (दव्वपरिवट्टरूवो=द्रव्यपरिवर्तनरूपः) द्रव्योंका परिवर्तन करनेवाला और (परिणामादीलक्खो=परिणामादिलक्ष्यः) परिणमनआदि लक्षणोंसे जाना जाता है, (सो=सः) वह (ववहारो=व्यवहार) व्यवहार (कालो=काल) काल (हवेइ=भवति) है। (य=च) और (वट्टणलक्खो=वर्तनालक्षण) वर्तना जिसका लक्षण है, वह (परमट्ठो=परमार्थ) काल है ॥ २१ ॥

एवं षड्भेदं इदं जीवाजीवप्रभेदतः द्रव्यम् ।
उक्तं कालवियुक्तं ज्ञातव्याः पञ्च अस्तिकायाः तु ॥ २३ ॥

अन्वयार्थ—(एवं=एवम) इसप्रकार (जीवाजीवप्पभेदो=जीवाजीवप्रभेदतः) जीव और अजीवके भेदसे (इदं=इद-) यह (दव्वं=द्रव्यम्) द्रव्यसमूह (छब्भेयं=षड्भेदम्) छह प्रकार (उत्तं=उक्तम्) कहा गया है (दु=तु) और (काल- विजुत्तं=कालवियुक्तम्) कालद्रव्यको छोड़कर (पंच=पञ्च) पांच द्रव्य (अत्थिकाया=अस्तिकायाः) अस्तिकाय (णायव्वा=ज्ञा- तव्याः) जानने चाहिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—द्रव्योंके मुख्य दो भेद हैं, एक जीव और दूसरा अजीव । अजीवके पांच भेद हैं-पुद्गल, धर्म, अधर्म काल और आकाश । इस तरह एक और पांच मिलकर छह द्रव्य हुए । इन छह द्रव्योंमेंसे कालद्रव्यको छोड़कर शेष पांचको अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाशको अस्तिकाय कहते हैं ।

अस्तिकायका लक्षण,—

**संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा ।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥ २४ ॥**

सन्ति यतः तेन एते अस्ति इति भणन्ति जिनवराः यस्मात् ।
कायाः इव बहुदेशाः तस्मात् कायाः च अस्तिकायाः च ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ—(जदो यतः) क्योंकि (एदे एते) ये जीव आदि पांच द्रव्य (संति सन्ति) [illegible] (तेण तेन) तिस कारण- से इनको (जिणवरा जिनवराः) [illegible] जिन भगवान् (अत्थी-

ति=अस्ति इति) 'अस्ति' ऐसा (भणंति=भणन्ति) कहते हैं । (य=च) और (जम्हा=यस्मात्) जिस कारणसे (काया इव= काया इव) कायके समान (बहुदेसा=बहुदेशाः) बहुत प्रदेश-वाले हैं, (तम्हा=तस्मात्) तिस कारणसे (काया=कायाः) काय कहते हैं । (य=च) और इसीसे इन्हें (अत्थिकाया=अस्तिकायाः) अस्तिकाय कहते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—जैसे काय अर्थात् शरीर बहुप्रदेशी है, उसी प्रकारसे धर्म आदि पांचों द्रव्य बहुत प्रदेशी हैं इससे इन्हें काय कहते हैं और ये पांचों नित्य विद्यमान रहते हैं, इससे 'अस्ति' कहते हैं । इसप्रकार इन पांचों द्रव्योंको 'अस्ति-काय' संज्ञा होती है । कालद्रव्यकी काय संज्ञा नहीं है, अर्थात् उसके अणु जुदे जुदे एक एक हैं—एक प्रदेशी हैं । इसलिये उसकी गिनती अस्तिकायोंमें नहीं है ।

द्रव्योंके प्रदेशोंकी संख्या —

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ २५ ॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे ।
मूर्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः ॥ २५ ॥

(आयासे=आकाशे) आकाश द्रव्यमें (अणंत=अनन्ताः) अनन्त प्रदेश हैं। (मुत्ते=मूर्ते) मूर्त अर्थात् पुद्गल द्रव्यमें (तिविह=त्रिविधाः) तीन प्रकारके—संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं। (कालस्स=कालस्य) कालद्रव्यके (एगो=एकः) एक प्रदेश है (तेण=तेन) जिस कारणसे (सो=सः) वह (काओ=कायः) कायवान् (ण=न) नहीं है ॥ २५ ॥

भावार्थ—लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्त हो सकता है इस कारण जीव असंख्यातप्रदेशी है। इसीप्रकार धर्म और अधर्म द्रव्य भी लोकाकाशमें सर्वत्र भरे हुए हैं, इस कारण ये दोनों भी असंख्यातप्रदेशी हैं। आकाशकी कुछ सीमा नहीं है—लोकसे बाहर भी वह फैला हुवा है इस कारण यह अनन्तप्रदेशी है। पुद्गल द्रव्य अनन्त है। वह परमाणुरूप और स्कन्धरूप इसतरह दो प्रकारका होता है। जो स्कन्धरूप होता है वह संख्यात परमाणुओंसे मिलकर बनता है, असंख्यात परमाणुओंसे मिलकर बनता है और अनन्त परमाणुओंसे भी बनता है। इसकारण पुद्गलको संख्यात असंख्यात तथा अनन्तप्रदेशी कहा है। कालके अणु एक एक जुदे जुदे हैं वे मिलकर स्कन्ध नहीं हो सकते। एक प्रदेशी हैं। इस कारण कालकी काय संज्ञा नहीं है।

पुद्गल द्रव्यका एक अणु भी कायवान् है।—

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

एकप्रदेशः अपि अणुः नानास्कन्धप्रदेशतः भवति।
बहुदेशः उपचारात् तेन च कायः भणन्ति सर्वज्ञाः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(एयपदेसो वि एकप्रदेशः अपि) एक प्रदेश-

ति=अस्ति इति) 'अस्ति' ऐसा (भणंति=भणन्ति) कहते हैं। (य=च) और (जम्हा=यस्मात्) जिस कारणसे (काया इव=काया इव) कायके समान (बहुदेसा=बहुदेशाः) बहुत प्रदेश-वाले हैं (तम्हा=तस्मात्) तिस कारणसे (काया=कायाः) काय कहते हैं। (य=च) और इसीसे इन्हें (अत्थिकाया=अस्ति-कायाः) अस्तिकाय कहते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—जैसे काय अर्थात् शरीर बहुतप्रदेशी है, उसी प्रकारसे धर्म आदि पांचों द्रव्य बहुत प्रदेशी हैं इससे इन्हें काय कहते हैं और ये पाचों नित्य विद्यमान रहते हैं, इससे 'अस्ति' कहते हैं। इसतरह इन पांचों द्रव्योंकी 'अस्ति-काय' संज्ञा होती है। कालद्रव्यकी काय संज्ञा नहीं है, अर्थात् उसके अणु जुदे जुदे एक एक हैं–एक प्रदेशी हैं। इसलिये उसकी गिनती अस्तिकायोंमें नहीं है।

द्रव्योंके प्रदेशोंकी संख्या,—

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ॥ २५॥

भवन्ति असंख्याः जीवे धर्माधर्मयोः अनन्ताः आकाशे।
मूर्ते त्रिविधाः प्रदेशाः कालस्य एकः न तेन सः कायः॥ २५॥

अन्वयार्थ—(जीवे=जीवे) एक जीवमें और (धम्माध-म्मे=धर्माधर्मयो) धर्म तथा अधर्म द्रव्यमें (असंखा=असंख्या) असंख्यात (पदेसा=प्रदेशा) प्रदेश (होंति=भवन्ति) हैं और

---

१ काय इवाचरन्तीति कायन्ति आचारार्थे क्विप् तत कायन्तीति काय. क्विप् च उपमार्थे. ! बहुप्रदेशत्वम्। अस्ति इति अव्ययम्। अस्ति विद्यते कायः बहुप्रदेशत्वं यस्यासौ अस्तिकाय।

(आयासे=आकाशे) आकाश द्रव्यमें (अणंत=अनन्ताः) अनन्त प्रदेश हैं। (मुत्ते=मूर्ते) मूर्त अर्थात् पुद्गल द्रव्यमें (तिविह=त्रिविधाः) तीन प्रकारके—संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं। (कालस्स=कालस्य) कालद्रव्यके (एगो=एकः) एक प्रदेश है (तेण=तेन) तिस कारणसे (सो=सः) यह (काओ=कायः) कायवान् (ण=न) नहीं है ॥ २५ ॥

भावार्थ—लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं और एक जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्त हो सकता है इस कारण जीव असंख्यातप्रदेशी है। इसीप्रकार धर्म और अधर्म द्रव्य भी लोकाकाशमें सर्वत्र भरे हुए हैं, इस कारण ये दोनों भी असंख्यातप्रदेशी हैं। आकाशकी कुछ सीमा नहीं है—लोकसे बाहर भी वह फैला हुवा है इस कारण वह अनन्तप्रदेशी है। पुद्गल द्रव्य अनन्त है। वह परमाणुरूप और स्कन्धरूप इसतरह दो प्रकारका होता है। जो स्कन्धरूप होता है वह संख्यात परमाणुओंमे मिलकर बनता है, असंख्यात परमाणुओंसे मिलकर बनता है और अनन्त परमाणुओंसे भी बनता है। इसकारण पुद्गलको संख्यात असंख्यात तथा अनन्तप्रदेशी कहा है। कालके अणु एक एक जुदे जुदे हैं वे मिलकर स्कन्ध नहीं हो सकते। एक प्रदेशी हैं। इस कारण कालकी काय संज्ञा नहीं है।

पुद्गल द्रव्यका एक अणु भी कायवान् है,—

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥२६॥

एकप्रदेश अपि अणु नानास्कन्धप्रदेशात् भवति ।
बहुदेश उपचारात् तेन च काय भणन्ति सर्वज्ञा ॥२६॥

अन्वयार्थ —(एयपदेसो वि एकप्रदेश अपि) एक प्रदेश-

वाला भी (अणू=अणुः) पुद्गलका परमाणु (... सदो=नानास्कन्धप्रदेशतः) अनेक स्कन्धप्रदेशोंका कारण ... (बहुदेसो=बहुदेशः) शक्तिकी अपेक्षा बहुप्रदेशी (होदि— ...ति) होता है । (तेण=तेन) तिस कारणसे (य=च) (सव्वण्हु=सर्वज्ञाः) सर्वज्ञदेव (उवयारा=उपचारात्) ...हारनयसे परमाणुको (काओ=कायः) काय (भणंति=भणन्ति) कहते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—काल एकप्रदेशी है, इस कारण उसको काय ... कहा है, तब पुद्गलका एक परमाणु भी एकप्रदेशी होनेके ... कायवान् नहीं होना चाहिये । इस शंकाका समाधान इस ... किया गया है कि एक प्रदेशी परमाणुको भी उपचारसे बहुप्रदे... कह सकते हैं । क्योंकि एक पुद्गल परमाणुसे अनेक प्रकारके पु... स्कन्ध बनते हैं ।

एक प्रदेशका परिमाण,—

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥

यावन्मात्रं आकाशं अविभागी पुद्गलाण्ववष्टब्धम् ।
तं खलु प्रदेशं जानीहि सर्वाणुस्थानदानार्हम् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—(जावदियं यावन्मात्र) जितना (आयासं=आकाशम् आकाश) अविभागीपुग्गलाणुवट्ठद्धं=अविभागी पुद्गलाण्ववष्टब्धम् , जिसका फिर भाग नहीं हो सके, ऐसे ...

निश्चय करके (सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं=सर्वाणुस्थानदानार्हम्) समस्त परमाणुओंको स्थान देनेमें समर्थ ऐसा (पदेसं=प्रदेशम्) प्रदेश [आकाशका एक प्रदेशमात्र क्षेत्र] (जाणे=जानीहि) जानो ॥ २७ ॥

भावार्थ—आकाशके जितने क्षेत्रमें पुद्गलका परमाणु (सबसे छोटा हिस्सा) आ जावे, उतने क्षेत्रको एक प्रदेश कहते हैं। इसी एकप्रदेश मात्र क्षेत्रमें कालका एक अणु धर्म अधर्म द्रव्यके एक एक प्रदेश और पुद्गलका एक अणु तथा संख्यात असंख्यात अनंत अणु एकक्षेत्रावगाही होकर आ सकते हैं।

इति श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे षड्द्रव्य-पञ्चास्तिकायप्रतिपादकनामा प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

आस्रवादि सातपदार्थोंके कहनेकी प्रतिज्ञा;—

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥

आस्रवबन्धनसंवरनिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये।
जीवाजीवविशेषाः तान् अपि समासेन प्रभणामः ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(जे=ये) जो (सपुण्णपावा=सपुण्यपापाः) पुण्य और पापसहित (आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा=आस्रवबन्धनसंवरनिर्जरमोक्षा) आस्रव बन्ध संवर निर्जरा और मोक्ष हैं वे (जीवाजीवविसेसा=जीवाजीवविशेषा) जीव और अजीवके ही भेद हैं सो (ते वि=तान् अपि) तिनको भी (समासेण=समासेन) संक्षेपताके साथ (पभणामो=प्रभणामः) कहते हैं ॥ २८ ॥

(...पंच पण पण्णदस तिय चदु=पञ्च-पञ्च पञ्चदश-त्रयः-चत्वारः) पाँच, पाँच, पंद्रह, तीन और चार (भेदा=भेदाः) भेदरूप (विण्णेया=विज्ञेयाः) जानना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—मिथ्यात्व ५, अविरति ५, प्रमाद १५, योग ३, और कषाय ४, ये ५ अथवा ३२ भेद भावास्रवके हैं।

द्रव्यास्रवके भेद;—

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥ ३१ ॥

ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्रवति।
द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेकभेदः जिनाख्यातः ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ—(णाणावरणादीणं=ज्ञानावरणादीनां) ज्ञानावरणादि अष्टप्रकार कर्मोंके (जोग्गं=योग्यं) होने योग्य (जं=यत्) जो (पुग्गलं=पुद्गलं) पुद्गलद्रव्य (समासवदि=समास्रवति) आता है (स=सः) उसे (जिणक्खादो=जिनाख्यातः) जिनेन्द्र कर कहा हुआ (अणेयभेदो=अनेकभेदः) अने-

(१) एकान्तमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व, अज्ञानमिथ्यात्व, ये पांच मिथ्यात्व हैं। (२) हिंसा, असत्य, चोरी, और परिग्रहकी आकांक्षारूप होना ये पांच अविरति हैं।

(३) विकहा तहा कसाया इंदिय णिद्दा तहेव पणओ य।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥

विकथा तथा कषाया इन्द्रियाणि निद्रा तथैव प्रणयश्च।
चतस्रः चत्वारः पञ्च एकैकं भवन्ति प्रमादाः खलु पञ्चदश ॥ १ ॥

अर्थ—४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय, १ निद्रा और १ प्रणय (स्नेह) ये पंद्रह प्रमाद हैं। (४) मनोयोग, वचनयोग और काययोग

अन्वयार्थ—(बंधो=बन्धः) बन्ध (पयडिठिदिअणुभा-गप्पदेसभेदा=प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात्) प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशके भेदसे (चदुविधो=चतुर्विधः) चार प्रकारका है। इनमेंसे (पयडिपदेसा दु=प्रकृतिप्रदेशौ तु) प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो (जोगा=योगात्) योगसे अर्थात् मन वचन कायकी क्रियासे (होंति=भवतः) होते हैं और (ठिदिअणुभागा=स्थित्यनुभागौ) स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध (कसायदो=कषायतः) कषायोंसे होते हैं ॥ ३३ ॥

भावसंवर और द्रव्यसंवरका लक्षण,—

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥ ३४ ॥

चेतनपरिणामः यः कर्मणः आस्रवनिरोधने हेतुः।
सः भावसंवरः खलु द्रव्यास्रवरोधने अन्यः ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(जो=यः) जो (चेदणपरिणामो=चेतनपरिणामः) आत्माका भाव (कम्मस्स=कर्मणः) कर्मोंके (आसवणिरोहणे=आस्रवनिरोधने) आस्रवके रोकनेमें (हेऊ=हेतुः) कारण है (सो=सः) वह (खलु=खलु) निश्चय करके (भावसंवरो=भावसंवरः) भावसंवर है और जो (दव्वासवरोहणे=द्रव्यास्रवरोधने) द्रव्य कर्मोंके आस्रवके रोकनेमें कारण है वह (अण्णो=अन्यः) दूसरा द्रव्यसंवर है ॥ ३४ ॥

भावसंवरके भेद—

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेयं णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥

सडनम्) उन कर्मोंका झड़जाना–छूटजाना द्रव्य निर्जरा है। (इदि=इति) इस प्रकार द्रव्यभावभेदसे (णिज्जरा=निर्जरा) निर्जरातत्त्व (दुविहा=द्विविधा) दो प्रकार (णेया=ज्ञेया) जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

भावार्थ—निर्जरा दो प्रकारकी है–एक भावनिर्जरा और दूसरी द्रव्यनिर्जरा। भावनिर्जरा भी दो प्रकारकी है–१ सविपाक और २ अविपाक। नियत स्थितिको पूरी करके कर्मोंका जो झड़ना होता है, (कर्मत्वशक्तिरहित होकर वे कर्म इसी क्षेत्रमें रहें अथवा अन्यत्र चले जावें) वह सविपाक (फल देकर झड़नेवाली) निर्जरा है। यह समस्त संसारी जीवोंके होती है। और जो तपश्चरणद्वारा उन कर्मोंको उदयप्रणालीमें लाकर कर्मत्वशक्तिरहित कर देना है, सो अविपाक निर्जरा है।

मोक्षके लक्षण और भेद:—

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥३७॥

सर्वस्य कर्मण: यः क्षयहेतुः आत्मनः हि परिणामः।
ज्ञेयः सः भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्मपृथग्भावः ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(जो=यः) जो (अप्पणो=आत्मनः) आत्माका (परिणामो=परिणामः) भाव (सव्वस्स=सर्वस्य) समस्त (कम्मणो=कर्मणः) कर्मोंके (खयहेदू=क्षयहेतुः) क्षय होनेका कारण है, (स=सः) वह (हु=हि) ही (भावमोक्खो=भावमोक्षः) भावमोक्ष (णेओ=ज्ञेयः) जानना चाहिये। (य=च)

नम्) उन कर्मोंका झड़जाना-छूटजाना द्रव्य निर्जरा
इदि=इति) इस प्रकार द्रव्यभावभेदसे (णिजरा=निर्जरा)
त्तस्य (दुविहा=द्विविधा) दो प्रकार (णेया=ज्ञेया) जानना
चे ॥ ३६ ॥

*—निर्जरा दो प्रकारकी है-एक भावनिर्जरा और दूसरी
नेर्जरा । भावनिर्जरा भी दो प्रकारकी है-१ सविपाक और
ाविपाक । नियत स्थितिको पूरी करके कर्मोंका जो झड़ना होता
(कर्मत्वशक्तिरहित होकर वे कर्म इसी क्षेत्रमें रहें अथवा अन्यत्र
जावें) यह सविपाक (फल देकर झड़नेवाली) निर्जरा है ।
समस्त संसारी जीवोंके होती है । और जो तपश्चरणद्वारा
कर्मोंको उदयप्रणालीमें लाकर कर्मत्वशक्तिरहित कर देना है, सो
पाक निर्जरा है ।

मोक्षके लक्षण और भेद—

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेो स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥३७॥

सर्वस्य कर्मणः यः क्षयहेतुः आत्मनः हि परिणामः ।
ज्ञेयः स भावमोक्षः द्रव्यविमोक्षः च कर्मपृथग्भावः ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(जो-यः) जो (अप्पणो=आत्मनः) आ-
[illegible] (परिणामो परिणामः) भाव (सव्वस्स सर्वस्य) समस्त
कम्मणो कर्मणः) कर्मोंके (खयहेदू क्षयहेतुः) क्षय होनेका
[illegible] है, (स=सः) वह (हु=हि) ही (भावमोक्खो भाव-
[illegible]) भावमोक्ष (णेओ=ज्ञेयः) जानना चाहिये । (य=च)

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं मोक्षस्य कारणं जानीहि ।
व्यवहारात् निश्चयतः तत्त्रिकमयः निज आत्मा ॥ ३९ ॥

—(ववहारा=व्यवहारात्) व्यवहारनयसे (सं-
णाणं चरणं=सम्यग्दर्शनं ज्ञानं चरणं) सम्यग्दर्शन, सम्य-
और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता (मोक्खस्स=मोक्ष-
मोक्षका (कारणं=कारणं) कारण (जाणे=जानीहि) जानो
(णिच्छयदो=निश्चयतः) निश्चयसे (तत्तियमइओ=तत्त्रिक-
) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रस्वरूप (णिओ=निज)
(अप्पा=आत्मा) आत्मा ही मोक्षका कारण है ॥ ३९ ॥

रत्नत्रययुक्त आत्मा ही मोक्षका कारण है:—

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि ।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

रत्नत्रयं न वर्तते आत्मानं मुक्त्वा अन्यद्रव्ये ।
तस्मात् तत्त्रिकमयः भवति खलु मोक्षस्य कारणं आत्मा ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ—(अप्पाणं=आत्मानं) आत्माको (मुयत्तु=मु-
) छोड़कर (अण्णदवियम्हि=अन्यद्रव्ये) किसी दूसरे
में (रयणत्तयं=रत्नत्रयं) रत्नत्रय (ण=न) नहीं (वट्टइ=
ते) है, (तम्हा=तस्मात्) इस कारण (तत्तियमइओ=
त्रिकमयः) रत्नत्रयमयी (आदा=आत्मा) आत्मा (हु=खलु)
मोक्खस्स=मोक्षस्य) मोक्षका (कारणं=कारणं) कारण
होदि=भवति) है ॥ ४० ॥

सम्यग्दर्शनका स्वरूप

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥ ४१ ॥

दारं=साकारम्) करके सहित । अणयप्पयारं=अनेक-
प्रकारम्) अपने और पर के स्वरूपका (गहणं=ग्रहणं)
(सम्मं णाणं=सम्यग्ज्ञानम्) सम्यग्ज्ञान है (च=च)
वह सम्यग्ज्ञान (अणेयभेयं=अनेकभेदं) अनेकभेदरूप है
मतिज्ञानादिके भेदसे अनेक प्रकारका है ॥ ४२ ॥

दर्शनोपयोगका स्वरूप—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥ ४३ ॥

यत्सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वा आकारम् ।
अविशेषयित्वा अर्थान् दर्शनम् इति भण्यते समये ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(अट्ठे=अर्थान्) पदार्थोंको (अविसेसिदूण=अ-
विशेष्य) विशेषता न करके और (आयारं=आकारम्)
रको अर्थात् विशेष स्वरूपको (णेव कट्टु=नैव कृत्वा) नहीं
करके (जं=यत्) जो (भावाणं=भावानाम्) पदार्थोंका
सामण्णं=सामान्यम्) सामान्य (गहणं=ग्रहणं) ग्रहण करना
जानना है, सो (दंसणं=दर्शनं) दर्शन है (इदि=इति)
प्रकार (समये=समये) जिनागममें (भण्णये=भण्यते)
है ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो ज्ञान पदार्थोंके अर्थमें अथवा आकार या स्वरू-
... विशेषता न करके ... है । इसप्रकार पदार्थकी
मात्र ... दर्शनोपयोग) है ।

दर्शन और ज्ञानके उत्पन्न होनेका नियम—

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा ।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥ ४४ ॥

अरहंतपरमेष्ठीका स्वरूप व ध्यान करनेकी प्रेरणा,—

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

नष्टचतुर्घातिकर्मा दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः ।
शुभदेहस्थ आत्मा शुद्धः अर्हन् विचिन्तनीयः ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(णट्ठचदुघाइकम्मो=नष्टचतुर्घातिकर्मा) चार घातियाकर्मोंको नष्ट करनेवाला, (दंसणसुहणाणवीरियमईओ=दर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः) अनन्तदर्शन, अनंतसुख, अनंतज्ञान, अनन्तवीर्यसहित, (सुहदेहत्थो=शुभदेहस्थः) सप्त धातुरहित, परम औदारिक शरीरमें स्थित और (सुद्धो=शुद्धः) अष्टादशदोषरहित (अप्पा=आत्मा) आत्मा (अरिहो=अर्हन्) अरहंत परमेष्ठी है, सो (विचिंतिज्जो=विचिन्तनीयः) विशेषप्रकारसे ध्यान करने योग्य है ॥ ५० ॥

सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप और ध्यानकी प्रेरणा;—

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

अक्षर 'अ' आचार्यका आदिका अक्षर 'आ' उपाध्यायका आदिका अक्षर 'उ' और मुनियोंका [साधुओंका] आदिका अक्षर 'म्' इस प्रकार अ+अ+आ+उ+म् इन पांच अक्षरोंके "दीर्घः।" १-१-७७। और "इकयेंडर।" १-१-८२ इन शाकटायनव्याकरण सूत्रोंके अनुसार सन्धित करनेसे पंचपरमेष्ठीका वाचक ओम्=अथवा 'ओं' अक्षर सिद्ध हुआ है। ८ अन्य विशेष मन्त्र बारह हजार प्रमाण जो "नमस्कारकल्प" है, उसमें जानना।

(१) ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये ४ कर्म आत्माके ज्ञानादि भावस्वरूप गुणोंको घात करते है, इसकारण इनको घातियाकर्म कहते है।

उपाध्यायका स्वरूप;—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५३

य. रत्नत्रययुक्तः नित्यं धर्मोपदेशने निरतः ।
स उपाध्याय आत्मा यतिवरवृषभः नमस्तस्मै ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ–(जो=य) जो (रयणत्तयजुत्तो=रत्नत्रययुक्तः रत्नत्रयसहित है और (णिच्चं=नित्यं) निरंतर (धम्मोवएस णे=धर्मोपदेशने) धर्मोपदेश देनेमें (णिरदो=निरतः) लवली है (सो=सः) वह (जदिवरवसहो=यतिवरवृषभ) यतीश्व रोंमें श्रेष्ठ (अप्पा=आत्मा) आत्मा (उवझाओ=उपाध्याय उपाध्याय है। (तस्स=तस्मै) उस उपाध्यायके अर्थ मे (णमो=नमः) नमस्कार हो ॥ ५३ ॥

साधुका (मुनिका) स्वरूप.—

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

दर्शनज्ञानसमग्रं मार्गं मोक्षस्य य हि चारित्रम् ।
साधयति नित्यशुद्धं साधु स. मुनि नम तस्मै ॥५४॥

अन्वयार्थ—(जो=यः) जो (मुणी=मुनि मुनि (दंसण णाणसमग्गं=दर्शनज्ञानसमग्रं सम्यग्दर्शन—सम्यग्ज्ञानसहि (मोक्खस्स=मोक्षस्य) मोक्षके मग्गं मार्ग आत्मस्वरूप तथा (णिच्चसुद्धं=नित्यशुद्ध सदा शुद्ध चारित्तं=चारित्र) तरह प्रकारके चारित्रका हु=हि अवश्यकर साधयदि=साधयति) साधन करता है स=स वह साहू साधु है। तस्स=तस्मै ,

निश्चयनयसे ध्येय ध्याता और ध्यानका स्वरूप,—

जं किंचि वि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिचयं झाणं ॥ ५५ ॥

यत् किञ्चिदपि चिन्तयन् निरीहवृत्तिः भवति यदा साधुः ।
लब्ध्वा एकत्वं तदा आहुः तत् तस्य निश्चयं ध्यानम् ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ—(जदा=यदा) जिस समय (साहू=साधुः) साधु
(एयत्तं=एकत्वं) एकाग्रभावो (लद्धूणय=लब्ध्वा) प्राप्त होकर
(जं किंचिवि=यत्किञ्चिदपि) जो कुछ भी (चिंतंतो=चिन्तयन्
विचार करता हुआ (णिरीहवित्ती=निरीहवृत्तिः) इच्छारहि
प्रवृत्तिवाला (हवे=भवति) होता है, (तदा=तदा) उस सम
(तस्स=तस्य) उस मुनिका (तं=तत्) यह ध्यान (णिच्च
निश्चयं) निश्चय (झाणं=ध्यानम्) ध्यान है ऐसा आचार्य मह
(आहु=आहुः) कहते हैं ॥ ५५ ॥

आत्मा) आत्मा (अप्पम्मि=आत्मनि) आत्मामें ही (रओ=रतः) लवलीन होकर (थिरो=स्थिरः) स्थिर (होइ=भवति) हो। (इणमेव=इदमेव) यह ही (परं=परम्) उत्कृष्ट (झाणं=ध्यानम्) ध्यान (हवे=भवति) है ॥ ५६ ॥

भावार्थ—न तो कोई उपाय करो न कुछ कहो और न किसीका चिंतवन करो। एक मात्र आत्माका आत्मामें लीन होना ही उत्कृष्ट ध्यान है।

ध्यानमें रत होनेके लिये तपश्रुतव्रतसहित होनेकी प्रेरणा:—

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥ ५७ ॥

तप श्रुतव्रतवान् चेता ध्यानरथधुरन्धर भवति यस्मात्।
तस्मात् तत्त्रिनयनिरता. तल्लब्ध्यै सदा भवत ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ—(जम्हा=यस्मात्) जिसकारणसे (तवसुदवदवं=तप·श्रुतव्रतवान्) तपश्रुतव्रतोंका धारक ही (चेदा=चेता) आत्मा (झाणरहधुरंधरो=ध्यानरथधुरन्धरः) ध्यानरूपी रथकी धुराका धारक (हवे=भवति) होता है (तम्हा=तस्मात्) उस कारणसे (तल्लद्धीए=तल्लब्ध्यै) उस ध्यानकी प्राप्तिके अर्थ तुम (सदा=सदा) निरन्तर (तत्तियणिरदा=तत्त्रितयनिरताः) उन तीनोंमें लवलीन (होह=भवत) होओ ॥ ५७ ॥

भावार्थ—द्वादशप्रकारके तप और पञ्चमहाव्रतोंके धारक होकर अनेकशास्त्रोंके पठनपाठन करनेवाले मुनि ही ध्यानके धारी होते हैं। इस कारण तुम भी तपस्वी, व्रती और श्रुतज्ञानी बनो।

ग्रन्थकर्त्ताकी प्रार्थना:—

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा
दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण
णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥

द्रव्यसंग्रहं इदं मुनिनाथाः दोषसंचयच्युताः श्रुतपूर्णाः ।
शोधयन्तु तनुसूत्रधरेण नेमिचन्द्रमुनिना भणितं यत् ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थ—(तणुसुत्तधरेण=तनुसूत्रधरेण) अल्पशास्त्रके ज्ञाता मुझ (णेमिचंदमुणिणा=नेमिचंद्रमुनिना) नेमिचन्द्रमुनिने (जं=यत्) जो (इणं=इदम्) यह (दव्वसंगहं=द्रव्यसंग्रहम्) द्रव्यसंग्रह नामका ग्रन्थ (भणियं=भणितं) कहा है, उसको (सुदपुण्णा=श्रुतपूर्णाः) हे शास्त्रके पाठी ! (दोससंचयचुदा=दोषसंचयच्युताः) दोष समूहसे रहित (मुणिणाहा=मुनिनाथाः) मुनियोंके नाथ, आप (सोधयंतु=शोधयन्तु) शुद्ध करो अर्थात् शुद्धतापूर्वक पढो पढाओ ॥ ५८ ॥

इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तिकदेवविरचिते द्रव्यसंग्रहग्रन्थे
मोक्षमार्गप्रतिपादक तृतीयोऽधिकारः ॥ ३ ॥

समाप्तोऽयं द्रव्यसंग्रहग्रन्थः ।

अनुवादकका कथन।

दोहा.

संवत सत उनईसपर, सत्तावनकी साल।
बुध अषाढ़ वदि अष्टमी,–दिवसहिं पन्नालाल ॥ १ ॥
कोल्हापुरके प्रान्तमें, श्रीलनन्दिनी पन्थ।
तामधि इक वनक्षेत्रपर, पूर्ण कियाे लिखि ग्रन्थ ॥ २ ॥
श्रीयुत प्रियवर मित्र मम, बुध कल्लापा नाम।
तिनसहायतें ग्रन्थ यह, भयाे विशुद्ध ललाम ॥ ३ ॥
जे नर नित इस ग्रन्थको, पढ़हिं सुनहिं सविचार।
ते इस भव यश सुख लहं, परभव भवदधिपार ॥ ४ ॥

आगरानिवासी स्वर्गीय कविवर द्यानतरायजी विरचित

भाषा द्रव्यसंग्रह।

अडिल्ल छंद।

रिषभनाथ जगनाथ सुगुनमनिखान हैं।
देवइंद्रनरइंदवंद सुखदान हैं॥
मूल जीव निर्जीव दरव षटविधि कहे।
वंदौं सीस नवाय सदा हम सरदहे॥ १॥
भौंम इंद्र चालीस भवन चालीस हैं।
रवि ससी चक्री सिंह सुरग चौबीस हैं॥
सत इंद्रनिकरि बन्दनीक अरहंत हैं।
वंदौं चौबीसौं जिनराज महंत हैं॥ २॥

सवैया मत्तगयन्द।

जीव सदा उपयोगमई, निरमूरत भावनिकौ करता है।
देह प्रवान कर्यौ भुगता, भववास धर्म सिवकौ भरता है॥
ऊरध चाल सुभाव विराजत, नौ अधिकारनिकौ धरता है।
सो सब भेद बखान करौं, सरधान धरौं भ्रमकौ हरता है॥३॥

कवित्त इकतीसा (मनहर)

इंद्री पांच बल तीन स्वास आव दस प्रान, मूल चार इंद्री बल स्वास आव मानिये। पुव्व जीवै था अब जीवै आगैं जीवहिगा, एई प्रानसेती विवहार जीव जानिये॥ गुरु

सत्ता बोध और चेतन है निह्चै ग्यान, सोमती स्वभाव ती कालमें बखानिये । विवहार निह्चै सरूप जानि सरधा ऐसें जीव वस्त लखें सो सुधी पहिचानिये ॥ ४ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)

इक उपजोग भेद दो ताके, दरसन ग्यान दरस विधिचार चच्छ अचच्छ अवधि अरु केवल, ग्यान कह्यौ है आठ प्रकार कुमति कुश्रुत कुअवधि औ सुमति, सुत, अवधि और मनपर धार । केवलग्यान सबका नायक, सो तुझमें किन अ निहार ॥ ५ ॥

सोरठा ।

मति श्रुत परोच्छ दच्छ, मनपरजै अरु अवधि सुम ।
एकदेशप्रतच्छ, केवल सकलप्रतच्छ है ॥ ६ ॥

चौपई (१५ मात्रा)

दरसन चार आठविध ग्यान । चेतनके लच्छन सामान ॥
नय व्योहार करमकृत जोग। निहचै सुद्ध सुद्ध उपजोग ॥७॥

कवित्त (३१ मात्रा)

बरन पंच रस पंच गंध दो, फरस आठकी मूरति होय ।
निहचै जीव अमूरति जानो, बीसमाहिंको एक न कोय ॥
करम बंध्यो व्योहार मुरती, काला गोरा कहियत लोय ।
नै निहचै व्योहार समुझिके, समता गहै विचच्छन सोय ॥८॥
दरव नोकरम घटपट आदिक, कर्ता जीव व्योहार बखान ।
भाव क्रोध आदिक रागादिक, नय असुद्ध निहचै परधान ॥

१ शाश्वत–कभी नाश नहीं [illegible] ... 'सहसुद्दपरोक्खदावं'

निहचै सुद्ध प्रबुद्ध निज गुनमैं, केवलग्यानसरूप सुजान ।
स्यादवादमैं सब नय साधै, अनुभौ निरविकलप सुरथान ॥९॥

छप्पय ।

ज्यौं दीपक परकास, एकसा घट बड़ नाहीं ।
घट मटकेमेंमाहिं, बड़े मटकेके माहीं ॥
त्यौं असंख परदेसवंत, जिय निहचै जानो ।
समुदघात विन तन, प्रमान व्यौहार बखानो ॥
लघुकाय पाय संकोच चढ़े, थूल देह लहि विसतरे
सब प्रानी आप समान हैं, दया करें सो नर तरें ॥१०॥

कवित्त (मनहर)

मूल देह छूटै नाहिं बाहर प्रदेस जाहिं, कह्यो है समुद-घात सोई भेद सात [illegible] । क्रोधसेती मृत्युनिपै वेदनासौं औपचिपै, सुभासुभ तेजसको पूतला विख्यात है ॥ मरनांत गतिमाहिं वैक्री बहु, जीव करें, आहारके साधूनिके संदेह बिलात है । केवल:समुदघात सबमाहिं चेतन ही, कायसेती बाहार निकल आप जात है ॥ ११ ॥

दोहा ।

लोकप्रमान प्रदेसमैं, तनप्रमान व्यौहार ।
लोक अलोक सुग्यानमैं, सुद्ध आप मम सार ॥ १२ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

पुन्य उदैतैं ग्यानपान बहु, पाप उदै तप सीत अपार ।
पुग्गल करमबंधतैं प्रानी, सुख दुख भुगता नय व्यौहार ॥

१ क छाटे बतनमें । २ बडे मटकेमें । ३ विशिष्ट । ४ गर्मी–

निहचै सुद्ध बुद्ध निज गुनमैं, केवलग्यानसरूप सुजान ।
स्यादवादमौं सब नय साधैं, अनुभौ निरविकलप सुरसान ॥९॥

छप्पय।

ज्यौं दीपक परकास, एकसा घट बढ़ै नाहीं ।
घटै मटकनेमाहिं, बढ़ै मटकेके माहीं ॥
त्यौं असंख परदेसवंत, जिय निहचै जानौं ।
समुद्घात विन तन, प्रमान व्यौहार बखानौं ॥
लघुकाय पाय संकोच ह्वै, थूल देह:लहि विसतरै
सब प्रानी आप समान हैं, दया करै सो नर तरै ॥१०॥

कवित्त (मनहर)

मूल देह छूटै नाहि बाहर प्रदेश जाहिं, कह्यो है समुद्-
घात सोई भेद सात है । क्रोधसेती मधुनिपै वेदनासौं
औषधिपै, सुभासुभ तैजसको पुतला विख्यात है ॥ मरनांत
गतिमाहिं थंकी बहु, जीव करै, आहारके साधुनिके संदेह
बिलात है । केवल:समुद्घात सर्वमाहिं चेतन ही, कायसेती
बाहार निकल आप जात है ॥ ११ ॥

दोहा।

लोकप्रमान प्रदेससौं, तनप्रमान व्यौहार ।
लोक अलोक सुग्यानसौं, सुद्ध आप मम सार ॥ १२ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

...न्य उदैते खानपान बहु, पाप उदै तप सीत अपार ।
...गल कर्मबंधते प्रानी, सुख दुख भुगता नय व्यौहार ॥

निहचै सुद्ध बुद्ध निज गुनमैं, केवलग्यानसरूप सुजान ।
स्यादवादसौं सब नय साधैं, अनुभौ निरविकलप सुखखान ॥९॥

छप्पय ।

ज्यौं दीपक परकास, एकसा घट बढ़ नाहीं ।
घटैं मटेकनेमाहिं, बढ़ै मटेकके माहीं ॥
त्यौं असंख परदेसवंत, जिय निहचै जानौ ।
समुद्घात बिन तन, प्रवान व्यौहार बखानौ ॥
लघुकाय पाय संकोच ह्वै, थूल देह लहि बिसतरै
सब प्रानी आप समान हैं, दया करैं सो नर तरै ॥१०॥

कवित्त (मनहर)

मूल देह छूटै नाहिं बाहर प्रदेस जाहिं, कह्यो है समुद्घात सोई भेद सात है । कायसेती मधुनिपै वेदनासौं औषधिपै, सुभासुभ तैजसकौ पूतला विख्यात है ॥ मरनांत गतिमाहिं थेयौ बहु, जीव फैर, आहारके साधूनिके संदेह विलात है । केवल:समुद्घात सबमाहिं चेतन ही, कायसेती बाहार निकल आप जात है ॥ ११ ॥

दोहा ।

लोकप्रमान प्रदेससौं, तनप्रमान व्यौहार ।
लोक अलोक सुग्यानसौं, सुद्ध आप गम सार ॥ १२ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

पुन्य उदैतैं खानपान बहु, पाप उदै तप सीत अपार ।
पुग्गल कर्मबंधनैं प्रानी, सुख दुख भुगता नय व्यौहार ॥

१ [illegible] । २ बढ़े मटकेमें । ३ [illegible] । ४ [illegible]-
[illegible] ।

अडिल्ल।

पुग्गल धर्म अधर्म गगन जमें जानियें।
पंच अजीव दरव सब जड़मइ मानियें॥
पुग्गल मूरतवंत वीसगुनसहित हैं।
चार अमूरति जान जिनागमविहित हैं॥ १९॥

कवित्त (मनहर)।

धूप छाँह चाँदनी अँधेर सबद आकार, धूल तुच्छ वँधें खुलें परजाय जानियें। सूच्छम सूच्छम अनु सूच्छम है कारमान, सूच्छमता धूल चार इंद्रीविषें मानियें॥ धूल सूच्छम हैं धूप छाँह धूल जल घीव, धूल धूल पृथीकाय भेद ए बखानियें। दस परजाय छहीं भेद सब पुग्गलके, न्यारो आप आपविषें आप हि पिछानियें॥ २०॥

चौपई।

मीनें चलें निजें जलकी पाय। जिय-पुग्गल-गति धरम सहाय।
थिर न चलावे प्रेरक होय। चलतेकौं सहकारी होय॥२१॥
जिय पुग्गलको थितसहकार। अधरम दरव कह्यौ गनधार॥
पंथी बैठें छायामाहिं। चलें तिन्हें बैठावें नाहिं॥ २२॥

---

१ कालद्रव्य।

२ दोहा—जैसे सलिल समूहमें, करे मीन गतिकर्म।
तैसें पुग्गल जीवको चलन सहाइ धर्म॥ २४॥

३ स्वयं ४ प्रेरक।

दोहा—ज्यों पथिक ग्रीषम समै, बैठे छायामाहि।
त्यों अधर्मकी भूमिमें जड चेतन ठहराहिं॥ [illegible]

[illegible]

अडिल्ल।

पुग्गल धर्म अधर्म गगन जमं जानियें।
पंच अजीव दरव सब जड़मइ मानियें॥
पुग्गल मूरतवंत बीसगुनसहित है।
चार अमूरति जान जिनागमविहित है॥ १९॥

कवित्त (मनहर)।

धूप छाँह चाँदनी अँधेर सबद आकार, थूल तुच्छ भेदैं थुलें परजाय जानियें। सूच्छम सूच्छम अनु सूच्छम है कारमान, सूच्छमता थूल चार इंद्रीविषै मानियें॥ थूल सूच्छम है धूप छाँह थूल जल घीव, थूल थूल पृथ्वीकाय भेद ए पखानियें। दस परजाय छहौं भेद सब पुग्गलके, न्यारो आप आपविषै आप हि पिछानियें॥ २०॥

चौपई।

मीनें चलैं निजें जलकी पाय। जिय-पुग्गल-गति परम सहाय।
थिर न चलावै पेरक होय। चलनेंकी सहकारी होय॥२१॥
जिय पुग्गलको थितसहकार। अधरम दरव कह्यो गनधार॥
पंथी बैठे छायामाहि। चलै तिन्हें बैठावै नाहि॥२२॥

१ कालद्रव्य।

२ दोहा—जैसे सलिल समूहमें, करै मीन गतिकर्म।
तैसे पुग्गल जीवको चलन सहाई धर्म॥ २०॥

३ स्थिर ४ प्रेरक।

५ दोहा—ज्यों पंथिक ग्रीषम समय बैठ छायामाहिं
त्यों अधर्मकी भूमिमें जड़ चेतन ठहराहिं॥ २३॥

—नाटक समयसार।

ल अगनि पवन तरुकाय। थावर एकेंद्री बहु भाय॥
चेंद्री सारवी नर देह। द्वै तैं चौ पनें त्रस चहुं एह॥१४॥
ी सूच्छम अरु थूल। विकलत्रय मव असेंने मूल॥
अमन पंचेंद्री माहिं। परज अपरज चतुरदस ठाहिं॥१५॥
मारगना गुनथान। नय असुद्ध संसारी जान॥
जिय सुद्ध सुद्धनय माहिं। आप सुद्ध अनुभौ मौं नाहिं॥१६

कवित्त इकतीसा।

र्म नास भए सिद्ध सदासिव नाहिं जीव, अष्टगुनमई सि
न पावरे। अविनासी सिद्ध सर्व सर्व मेरें जीवें नाहि
जाहिं नाहिं लोक अंत ठहराव रे। देहसेती कछु ही
प्रदेस सिद्ध, परसेनी मिल मिलें नाहीं याव (?) थावरे
ठहर हो जाहिं सागर ज्यों थिर सिद्ध, सुनतां गुमा
नींकें मन भाव रे॥ १७॥
कृति प्रदेस होय बंध जोगसेती होय, थिति अनुभाग
कसाय करें है। च्यारों बंध नासैं आग जैम पर्ने
ातें, वाकी तजि कौन पटढिसाकौ निर्जरै है॥ यकवाल
तिन तीन समैं अनाहार, होय हल गऊमूत जैमैं विमतैं
गर्भी चाल एकसमैं थाप जैम आहारक, मिथ्यातम जीर
म्यकतां नरै है॥ १८॥

[illegible]
[illegible]

अडिल्ल।

पुग्गल धर्म अधर्म गगन जमें जानियें।
पंच अजीव दरव सब जड़मई मानियें॥
पुग्गल मूरतवंत वीसगुनसहित है।
चार अमूरति आन जिनागमविहित है॥ १९॥

कवित्त (मनहर)।

धूप छाँह चाँदनी अँधेर सबद आकार, धूल सूच्छ बँधै गुलैं परजाय जानियें। सूच्छम सूच्छम अनु सूच्छम है कार-मान, सूच्छमता धूल चार इंद्रीविषैं मानियें॥ धूल सूच्छम है धूप छाँह धूल जल घीव, धूल धूल पृथीकाय भेद ए घ-खानियें। दस परजाय छहाँ भेद सब पुग्गलके, न्यारो आप आपविषैं आप हि पिछानियें॥ २०॥

चौपई।

मीनें चलें निजें जलकौं पाय। जिय-पुग्गल-गति धरम सहाय।
थिर न चलावै प्रेरक होय। चलतेकों सहकारी होय॥२१॥
जिय पुग्गलको थितसहकार। अधरम दरव कह्यो गनधार॥
पंथी बैठे छायामाहिं। चलें तिन्हें बैठावै नाहिं॥ २२॥

---

१ कालद्रव्य।

२ दोहा—जैसे सलिल समूहमें, करे मीन गतिकर्म।
तैसे पुग्गल जीवको, चलन सहाई धर्म॥ २०॥

३ स्वय। ४ प्रेरक।

५ दोहा—ज्यों पथिक ग्रीषम समै, बैठे छायामाहिं।
त्यों अधर्मकी भूमिमें जड़ चेतन ठहराहिं॥ २१॥
—नाटक समयसार।

विषय कषाय दया ममता निज, भाव भोगता निहचै धार।
सुद्ध ग्यान सुख सिद्ध भोगवै, धर्म ध्यान भोगी सुखसार॥१३॥

चौपई।

भू जल अगनि पवन तरुकाय। थावर एकेंद्री बहु भाय॥
लट चैंटी माखी नर देह। द्वै तैं चौ पर्नै त्रस चहैं एह॥१४॥
एकेंद्री सूच्छम अरु थूल। विकलत्रय सब असेंने मूल॥
समन अमन पंचेंद्री माहिं। परज अपरज चतुरदस ठाहिं॥१५॥
चौदै मारगना गुनथान। नय असुद्ध संसारी जान॥
सब जिय सुद्ध सुद्धनय माहिं। आप सुद्ध अनुभौ भी नाहिं॥१६॥

कवित्त इकतीसा।

कर्म नाम भए सिद्ध सदासिव नाहिं जीव, अष्टगुनमई सिद्ध निगुन न थावरे। अविनासी सिद्ध सर्म सर्म मरैं जीवैं नाहिं, चले जाहिं नाहिं लोक अंत ठहराव रे। देहसेती कछु हीन चेतन प्रदेस सिद्ध, परसेती मिन्न मिलैं नाहीं थाव (?) थावरे। मावलहर हो जाहिं सागर ज्यौं थिर सिद्ध, सुंनतौं सुभाव नाहिं नींकैं मन भाव रे॥ १७॥

प्रकृति प्रदेस दोय बंध जोगसेती होय, थिति अनुभाग बंधकौं कषाय करै है। चारौं बंध नासैं आग जेम चलै उरधकौं, याकी नजि कौन षटदिसाकौं निहरै है॥ वक्रचाल एक दोन तीन सर्म अनाहार, दाय हल गऊमूत जैंम विसतरै है। सूधी चाल एकसर्म थाण जेम आहारक, मिथ्यातम जीर मरे सम्यकत्मी नरै है॥ १८॥

अडिल्ल।

पुग्गल धर्म अधर्म गगन जम जानियें।
पंच अजीव दरब सब जड़मइ मानियें॥
पुग्गल मूरतवंत वीसगुनसहित है।
चार अमूरति ज्ञान जिनागमविहित है॥ १९॥

कवित्त (मनहर)।

धूप छौंह चाँदनी अँधेर सबद आकार, थूल सूच्छ बंधे खुलें परजाय जानियें। सूच्छम सूच्छम अनु सूच्छम है कारमान, सूच्छमता थूल चार इंद्रीविषै मानियें॥ थूल सूच्छम है धूप छौंह थूल जल घीव, थूल थूल पृथ्वीकाय भेद ए बखानियें। दस परजाय छहों भेद सब पुग्गलके, न्यारो आप आपविषै आप हि पिछानियें॥ २०॥

चौपई।

मीनें चलें निजै जलकों पाय। जिय-पुग्गल-गति धरम सहाय।
थिर न चलावै प्रेरक होय। चलनेकों सहकारी होय॥२१॥
जिय पुग्गलको थितसहकार। अधरम दरब कह्यो गनधार॥
पंथी बैठे छायामाहिं। चलें तिन्हें बैठावै नाहिं॥ २२॥

---

१ कालद्रव्य।

२ दोहा—जैसें सलिल समूहमें, करे मीन गतिकर्म।
तैसें पुग्गल जीवको, चलन सहाई धर्म॥ २०॥

[illegible]

४ दोहा—ज्यों पथिक ग्रीषम समै, बैठे छायामाहिं।
त्यों अधर्मकी भूमिमें जड़ चेतन ठहराहिं॥ २३॥
—नाटक समयसार।

विषय कषाय दया ममता निज, भाव मोगता निहचै धार।
सुद्ध ग्यान सुख सिद्ध मोगवै, धर्ग ध्यान मोगी सुखसार॥१३॥

चौपई।

भू जल अगनि पवन तरुकाय। थावर एकेंद्री बहु भाय॥
लट चैंटी मांखी नर देह। द्वै तें चौ पर्ने त्रस यहै एह॥१४॥
एकेंद्री सूच्छम अरु थूल। विकलत्रय सब असैनै मूल॥
समन अमन पंचेंद्री माहिं। परज अपरज चतुरदस ठाहिं॥१५॥
चौदै मारगना गुनथान। नय असुद्ध संसारी जान॥
सब जिय सुद्ध सुद्धनय माहिं। आप सुद्ध अनुभौ मैं नाहिं॥१६॥

कवित्त इकतीसा।

कर्म नाम मए सिद्ध सदासिव नाहिं जीव, अष्टगुनमई सिद्ध निगुन न पावरे। अविनासी सिद्ध सर्व सर्व मैं जीवै नाहिं, चलै जाहिं नाहिं लोक अंत ठहराय रे। देहसेती कछु हीन चेतन प्रदेस सिद्ध, परसेती मिन्न मिलै नाहीं याव (?) यावरे। मायलहर ही जाहिं सागर ज्यौं थिर सिद्ध, सुंनतौं गुमाव नाहिं तौकि मन भाव रे॥ १७॥

प्रकृति प्रदेस ठोय बंध जोगसेती होय, थिति अनुभाग बंधकौं कषाय करै है। चारौं बंध नामै आग जैम चलै ऊरधकौं, वाकी नति कोन पटदिशाकौं निरै है॥ वक्रचाल एक दोन तीन समै अनाहार होय हल गऊमन जैम विसतरै है सूधी चाल एकसमै चाल जैम आहारक, मिथ्यातम जीव सो सम्यकर्मा लहै है॥ १८॥

अडिल्ल।

पुग्गल धर्म अधर्म गगन जमे जानिये।
पंच अजीव दरव सब जड़मइ मानिये॥
पुग्गल मूरतवंत वीसगुनसहित है।
चार अमूरति जान जिनागमविहित है॥ १९॥

कवित्त (मनहर)।

धूप छाँह चाँदनी अँधेर सबद आकार, थूल तुच्छ बँधे गुलै परजाय जानिये। सूच्छम सूच्छम अनु सूच्छम है कारमान, सूच्छमना थूल चार इंद्रीविषै मानिये॥ थूल सूच्छम है धूप छाँह थूल जल धीव, थूल थूल पृथ्वीकाय भेद ए वखानिये। दस परजाय छहों भेद सब पुग्गलके, न्यारो आप आपविषै आप हि पिछानिये॥ २०॥

चौपई।

मीनं चलै निजं जलकौं पाय। जिय-पुग्गल-गति धरम सहाय।
थिर न चलावै प्रेरक होय। चलनेकौं सहकारी होय॥२१॥
जिंय पुग्गलको थितसहकार। अधरम दरव कह्यौ गनधार॥
पंथी बैठे छायामाहिं। चलै तिन्हें बैठावै नाहिं॥ २२॥

---

१ कालद्रव्य।

* दोहा—जैसें सलिल समूहमें, करे मीन गतिकर्म।
तैसें पुग्गल जीवको, चलन सहाई धर्म॥ २४॥

१ स्वयं २ प्रेरक।

* दोहा। ज्यों पथिक ग्रीषम समै, बैठे छायामाहिं।
त्यों अधर्मकी भूमिमें जड़ चेतन ठहराहिं॥ २३॥
—नाटक समयसार।

चौपई।

जीव दरव इक चेतनसार। दरव अजीव पंच परकार।
छहौं दरव भाषे समझाय। काल विना पंचास्तिकाय॥ २७॥

सोरठा।

बहु प्रदेश जिनमाहिं, अस्तिकाय तेई कहे।
तातैं काया नाहिं, काल एक परदेसकौ॥ २८॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

धर्म अधर्म एक चेतनके, असंख्यात परदेस सुजान।
व्योममें अनंतप्रदेस विराजै, लोक अलोक सर्वगतवान॥
पुद्गल संख असंख अनंतप्रदेशी विछुरै मिलै प्रवान।
काल एकपरदेस अरूपी, तातैं काल अकाय बखान॥ २९॥
कालानु है एक प्रदेशी, मिलन सकति सो कबही नाहिं।
तातैं काल अकाय बतायौ, अप्रदेस है छद्दरवमाहिं॥
परमानू है एकप्रदेसी, मिलि बहु भेद खंध है जांहि।
तातैं कायवंत बहुदेसी, नय उपचार होनकी छाँहिं॥ ३०॥
अविभागी पुद्गल परमानूं, रोकै जेतौ खेत अकास।
ताकौ नाम प्रदेश बखान्यौ, तामैं पूरनगुन अवकास॥
धर्म अधर्म प्रदेस प्रमानूं, कालानूं बहु खंधनिवास।
जीव अनन्त प्रदेस ठौर दे, धनि सर्वज्ञकियौ जिन भास॥ ३१॥

मनहरण।

अलबध सूच्छम निगोदियेकौ चक्रचाल, पहिले समैंमें लंबा चौग ठौर ज्ञान है। दूजे समैमांहिं चौग तीजे समै-मांहिं गोल, सोई सबतैं जघन्य चेतनकौ ज्ञान है॥ तातैं

१ आकाश द्रव्य। २ यह चरण मूलमें विशेष है। ३ अलब्धपर्याप्त।

दोहा ।

पुन्यें पाप दोनौं नहीं, हैं अविनासी वस्त ।
तीन लोकमें भर रहे, ऊपर तर्लै समस्त ॥ २३ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

सरब दरबकौं ठौर देत है, दरब अकास सो गुन अवकास ।
ताके दोय भेद नित जानों, लोकाकास अलोकाकास ॥
पुग्गल धर्म अधर्म जीव जम, पंच जहां सो लोकाकास ।
पंचदरब बिन एक सुन नभ, सो अलोक ग्यानमें प्रकास ॥२४॥

मनहरण ।

एक कालअंनूसेनी दूजी कालअनू आप, पुग्गलकी परमांनू तहां मंम होत है। जलकी कटोरी घरी मूरजसौं दिन होय, मास रितु वर्ष ऐनं आदि दे उदोत है ॥ नई वस्त पौंदी करै परावर्त चाल धरै सोई विवहार काल विनासीक गोत है । अतीत अनागत वरतमान परजाय, कालानूं दरब लखै जाकै उर जोत है ॥ २५ ॥

एक दर्व है आकास ताके अनंते प्रदेस, तामें लोकाकासके असंख्यात प्रदेस है । एक एक देसमाहिं एक एक काल अनू रतनरासि जैसें थिर न्यारी बिन मेस है ॥ सर्व दर्व परननि सहाय निहचै काल, असंख्यात सत्ता अविनासी अकलेस है । एक ठौर धर्यो टह चाह कौर है अखंड, त्यौं अलोककौं सहाय काल ही असम है ॥ २६ ॥

१ धम [illegible] नहीं है । २ इनको अविनाशी द्रव्य है [illegible] अनुम [illegible] अधम द्रव्य [illegible] पुद्गल । [illegible]

चौपई।

जीव दरव इक चेतनसार। दरव अजीव पंच परकार।
छहौं दरव भाषे समझाय। काल विना पंचासतिकाय ॥ २७ ॥

सोरठा।

बहु प्रदेश जिनमाहिं, अस्तिकाय तेई कहे।
यातें काया नाहिं, काल एक परदेसकौं ॥ २८ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

धर्म अधर्म एक चेतनके, असंख्यात परदेस सुजान।
व्योम अनंतप्रदेस विराजै, लोक अलोक सर्वगतवान ॥
पुद्गल संख असंख अनंतप्रदेशी विछुरै मिलै प्रवान।
काल एकपरदेस अरूपी, तातें काल अकाय बखान ॥ २९ ॥
कालानु है एक प्रदेशी, मिलन सकति सो कबही नाहिं।
तातें काल अकाय बतायो, अप्रदेश है छदरवमाहिं ॥
परमानू है एकप्रदेसी, मिलि बहु भेद खंध है जाहिं।
तातें कायवंत बहुदेसी, नय उपचार होनकी छाँहिं ॥ ३० ॥
अविभागी पुद्गल परमानूं, रोकै जेतौ खेत अकास।
ताकौ नाम प्रदेश बखान्यौ, तामैं पूरनगुन अवकास ॥
धर्म अधर्म प्रदेस प्रमानूं, कालानूं बहु खंधनिवास।
जीव अनन्त प्रदेस ठौर दे, धनि सर्वग्यकियौ जिन भास ॥३१॥

मंनहरण।

अलब्ध सूच्छम निगोदियेकी वक्रचाल, पहिले समैमैं लंबा चौंरा होय जात है। दूजे समैमाहिं चौंग तीजे समैमाहिं गोल, सोई सर्वतें जघन्य चेतनकौ मान है ॥ गर्या

१ आकाश द्रव्य। यह अतिसूच्छम विशेष है। ३ अलब्धपर्याप्त।

परमाद पँद्रै जोग पँद्रै, बहत्तर दुरदाय हैं ॥
आतमाके परनाम गई, भाव आस्रव नहिं मला।
वसु करम होनें जोग आवें, दरव आस्रव पुद्गला ॥ ३६ ॥
जिय राग दोष विमोह अपने, भाव चिकने परनत हैं।
इम भावबंध निमित्तसेती, करमरज उड़ि लगत हैं ॥
चेतन प्रदेस पुरान करमनि, एकरम मिलि दिढ़ भये।
यह दरवबंध जथा उदय मद, भाव बहुविध परनये ॥ ३७ ॥

कवित्त (मनहरण)।

जीव जैसा भाव करै तैसा कर्मबंध परै, तीव्र मंद मध्य मंद लीनै विसतारमीं। बँधै जैसा उदय आवै तैसा भाव उपजावै, वैसा फिर बँधै किम छुटत संसारमीं ॥ भावसेती पंच होय पंच सेती उदै जोय, उदै भाव चवभंगी साधी विवहारमीं। तीव्रमंद उदै तीव्रभाव मूढ़ धारत हैं, तीव्रमंद उदै मंदभाव हो विचारमीं ॥ ३८ ॥

छप्पय।

पंच पंच व्रत समिति, गुपति तीनों थिर पालै।
बाँग भावन भाय, धर्म दस भेद सँभालै ॥
दस आलोचन सुद्ध, पंच चारित बड़भागी।
जित छुधादि बाईस, भावसंवर वैरागी ॥
तिसके नहिं लागे करमरज, सो संवर दरबित कहा।
यह भाव दरव संवर समझि, जुदा जगतमीं हो रहा ॥ ३९ ॥
तप निरवांछक भाव, निर्जरा भावित सोई।
बन्धी कर्म तप खिरें, निर्जरा दरवित होई ॥

१ भावई अनुप्रेक्षा।

नाम मच्छ साढ़े चार कोडि जोजनकौ, दोनों गेर्कं टोर
असंख्यात देसवात है। छोटा बड़ा मध्य भेद कैसाई सरीर
धरों, एक परदेस एक जीव न समात है ॥ ३२ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

चार दर्व निज भिन्न विराजें, पुद्गल जीव मिलें जिह ठार।
सात पदारथ तहां होत हैं, दोय आपमें नौ परकार ॥
आस्रव बन्धन संवर निर्जर, मोख पुन्य अरु पापनिहार।
सो सब भेद बखान करत हों, कछु सरूप सम्यकगुनकार ॥३३॥

छप्पय।

एक चेतना सार, दोय निहचै व्योहारी।
रतनत्रयकरि तीन, अनंतचतुष्टयधारी ॥
पंचपरमपदरूप, काय षट् पालनहारी।
सातभंगमों सधै, आठ कर्मनितें न्यारी।
नौ-लवधिवंत दस धरमधर, सो सरूप हिरदै धरों।
इम जीवतत्त्वसरधानसों, दुस्तर भवसागर तरों ॥ ३४ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

पंच अजीव सुद्ध हैं चारों, जिनके कबौं विभाव न होय।
पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजें, सुद्ध अनूगुन पाँचों जोय ॥
सीत ताप रूखे चिकनेके, दो रस वरन गंध अवलोय।
खंध असुद्ध वीस गुन परगट, देखें जानें चेतन सोय ॥ ३५ ॥

गीता छन्द।

मिथ्यात[1] अविरत पंच बारं, पचवीस कषाय है।

---

१ दोनोंका [illegible] सरीर।
२ इस छन्दसे [illegible] अच्छा है। अनुवाद

परमाद पंद्र जोग पंद्र, बहुत्तर दुखदाय हैं ॥
आतमाके परनाम एई, भाव आस्रव नहिं भला ।
तसु करम होनें जोग आवैं, दरव आस्रव पुदगला ॥ ३६ ॥
जिय राग दोष विमोह अपने, भाव चिकने परनत हैं ।
इस भावबंध निमित्तसेती, करमरज उड़ि लगत हैं ॥
चेतन प्रदेस पुरान करमनि, एकरस मिलि दिढ़ भये ।
यह दरवबंध जथा उदय मंद, भाव बहुविध परनये ॥ ३७ ॥

कवित्त (मनहरण)।

जीव जैसा भाव करे तैसा कर्मबंध परै, तीव्र मंद मध्य भेद लीनैं विसतारसौं । बंधै जैसा उदय आवै तैसा भाव उपजावै, वैसा फिर बंधै किम छूटत संसारसौं ॥ भावसेती बंध होय बंध सेती उदै जोय, उदै भाव चतुभंगी साधी विवहारसौं । तीव्रमंद उदै तीव्रभाव मूढ़ धारत हैं, तीव्रमंद उदै मंदभाव हो विचारसौं ॥ ३८ ॥

छप्पय।

पंच पंच व्रत समिति, गुपति तीनों थिर पालै ।
बारै भावन भाय, धर्म दस भेद सभालै ॥
दस आलोचन सुद्ध, पंच चारित बड़भागी ।
जित छुधादि बाईस, भावसंवर वैरागी ॥
निसकै नहिं लागै करमरज, सो संवर दरवित कहा ।
यह भाव दरव संवर समझि, जुदा जगतसौं हो रहा ॥ ३९ ॥
तप निरवांछक भाव, निर्जरा भावित सोई ।
खिर्यौ करम तन खिरै, निर्जरा दरवित होई ॥

१ भावन अनुप्रे० ।

नाम मच्छ माहे बारे कोडि जोजनको, दोनों गेकें लोक असंख्यात देसघात है। छोटा बड़ा मध्य भेद कर्मोंई सरीर धरो, एक परदेस एक जीव न समात है ॥ ३२ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

चार दर्व नित मिश्र विराजें, पुद्गल जीव मिलें जिह बार।
सात पदारथ तहां होत हैं, दोय आपसों नो परकार॥
आस्रव बन्धन संवर निर्जर, मोख पुन्य अरु पापनिहार।
सो सब भेद बखान करत हौं, कछु सरूप सम्यकगुनकार ॥३३॥

छप्पय।

एक चेतना सार, दोय निहचै व्योहारी।
रतनत्रयकरि तीन, अनंतचतुष्टयधारी॥
पंचपरमपदरूप, काय षट् पालनहारी।
सातभंगसों संधे, आठ कर्मनितें न्यारी।
नौ-लवधिवंत दस धरमधर, सो सरूप हिरदै धरो।
इम जीवतत्त्वसरधानसों, दुस्तर भवसागर तरो॥ ३४॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

पंच अजीव सुद्ध हैं चारों, जिनके कभी विभाव न होय।
पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजें, सुद्ध अनूगुन पाँचों जोय॥
सीत ताप रूखे चिकनेके, दो रस वरन गंध अवलोय।
खंध असुद्ध बीस गुन परगट, देखें जानें चेतन सोय॥ ३५॥

गीता छन्द।

मिथ्यात[२] अविरत पंच बारे, पंचवीस कषाय हैं।

---

१ दोनोंका [illegible] नारकियोंका और [illegible]का सरीर।
२ इस छन्दमें [illegible] भावमात्र आया है। अनुवाद [illegible]

परमाद पंद्रै जोग पंद्रै, बहुतर दुखदाय हैं ॥
आतमाके परनाम एई, भाव आस्रव नहिं भला ।
वसु करम होंने जोग आवैं, दरव आस्रव पुदगला ॥ ३६ ॥
जिय राग दोष विमोह अपने, भाव चिकने पगत हैं ।
इस भावबंध निमित्तसेती, करमरज उड़ि लगत हैं ॥
चेतन प्रदेस पुरान करमनि, एकरस मिलि दिढ़ भये ।
यह दरवबंध जथा उदय मद, भाव बहुविध परनये ॥ ३७ ॥

कवित्त (मनहरण)।

जीव जैसा भाव करै तैसा कर्मबंध परै, तीव्र मंद मध्य भेद लीनैं विसतारसौं । बंधै जैसा उदय आवै तैसा भाव उपजावै, वैसा फिर बंधै किम छूटत संसारसौं ॥ भावसौंरू बंध होय बंध साह उदै जोय, उदै भाव भवभंगी साधी विवहारसौं। तीव्रमंद उदै तीव्रभाव मूढ़ धारत हैं, तीव्रमंद उदै मंदभाव हो विचारसौं ॥ ३८ ॥

छप्पय ।

पंच पंच व्रत समिति, गुपति तीनौं थिर पालै ।
धारि भावन भाय, धर्म दस भेद सभालै ॥
दस आलोचन शुद्ध, पंच चारित बड़भागी ।
जित छुधादि बाईस, भावसंवर वैरागी ॥
तिसकै नहिं लागैं करमरज, सो संवर दरवित कहा ।
यह भाव दरव संवर समझि, जुदा जगतसौं हो रहा ॥ ३९ ॥
तप निरवाछक भाव, निर्जरा भावित सोई ।
बंध्यौ करम तप खिरै, निर्जरा दरवित होई ॥

१ भावक अनुप्रेक्षा ।

नाम मच्छ माहे चारै कोडि जोजनकौ, दोनौं गेकैं लोक
असंख्यात देसघात है। छोटा बड़ा मध्य भेद कैमांई सरीर
धरी, एक परदेस एक जीव न समात है ॥ ३२ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

चार दर्व नित मिल विराजैं, पुद्गल जीव मिलैं जिह बार।
सात पदारथ तहाँ होत हैं, दोय आपमैं नौ परकार ॥
आस्रव बन्धन संवर निर्जर, मोक्ष पुन्य अरु पापनिहार।
सो सब भेद बखान करत हौं, कछु सरूप सम्यकगुनकार ॥३३॥

छप्पय।

एक चेतना सार, दोय निहचै व्योहारी।
रतनत्रयकरि तीन, अनंतचतुष्टयधारी ॥
पंचपरमपदरूप, काय षट पालनहारी।
सातभंगसौं सधै, आठ कर्मनितैं न्यारी।
नौ-लवधिवंत दस धरमधर, सो सरूप हिरदै धरी।
इम जीवतत्त्वसरधानसौं, दुस्तर भवसागर तरौ ॥ ३४ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

पंच अजीव सुद्ध हैं चारौं, जिनकै कभी विभाव न होय।
पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजै, सुद्ध अनगुन पाँचौं जोय ॥
सीत ताप रूखे चिकनेके, दो रस वरन गंध अवलोय।
गंध असुद्ध बीस गुन परगट, देखै जानै चेतन सोय ॥ ३५ ॥

गीता छन्द।

मिथ्यात[1] अविरत पंच बार, पंचबीस कषाय हैं।

---

१ दोनोंका [illegible] और [illegible] शरीर।
२ इस छन्दमें [illegible] अनुवाद

उदै देयकरि खिरै, बुरी सविपाक निर्जरा ।
उदै देय बिन खिरै, भली अविपाक सुखकरा ॥
सबके अकाम निर्जरा जग-ग्यांना सकाम निर्जरा ।
अविपाक सकाम करी तिन्हीं, ग्यान घटमें घरा ॥ ४० ॥

मनहरण ।

रागदोष मोह नाहिं सम्यक सरूपमाहिं, सोई भावमो आप सुद्ध भावमई है । प्रकृति प्रदेस थिति अनुभाग बंध चार सर्वथा विनास भये दर्वमोष भई ॥ ई परजाय-तैं-विचा जीव मोष भयौ सार, दर्वित-तैं सदा सिव भई नाहिं नई है दर्वमोष भावमोष सिद्ध जीव राजत हैं, सो मैं अबै मेरी बुधि ऐसी परनई है ॥ ४१ ॥

भावपुन्य सुभभाव पूजा दान जप तप, भावपाप परि नाम विषय औ कषाय है । दर्व पुन्य साता अठसठ भेद पुग्ग लके, दर्वपाप सौ भेद पुग्गल सहुभाय है । दर्व भाव पुन्य पाप सुर्ग नर्ककौ मिलाप, सबसौं निराला आप यही जीवराय है । एई षट द्रव्य नव तत्त्व सरधान करौ, राग दोष मोह हर्न मोषकौ उपाय है ॥ ४२ ॥

सोरठा ।

सम्यक दरसन ग्यान, चारित सिवकारन कहे ।
नय व्यवहार प्रवांन, निहचै निर्दै आतमा ॥ ४३ ॥

चौपई ।

सम्यक रतनत्रय जियमाहिं ।
निज तजि और दर्वमें नाहिं ॥

तातैं तीनोंमैं निहंपाप।
सिवकारन यह चेतन आप ॥ ४४ ॥

दोहा।

आप आपमैं आपकौं, देखै दरसन जोय।
जानपना सो ग्यान है, थिरता चारित सोय ॥ ४५ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

जीवादिक भावनिकी सरधा, सो सम्यक निजरूप निहार।
जा विन मिथ्या ग्यान होत है, जा विन मिथ्या चारित धार ॥
दुर-नै-कौं परवेस जहां नहिं, संसय विभ्रम मोहनिवार।
सुपरसुरूप जथारथ जानैं, सम्यक ग्यान अनेक प्रकार ॥ ४६ ॥
जो सामान गहैं विसेस विन, निराकार दरसन परवान।
जो विसेस जानैं अर्थनिकौं, सो आकार ग्यान परधान ॥
संसारी छद्मस्थ जीवकौं, एककाल नहिं दरसन ग्यान।
एक समयमैं देखैं जानैं, केवलरूप अनूपम भान ॥ ४७ ॥

दोहा।

असुभ भाव निरवारकै, सुभउपयोग विसतार।
समिति गुपति व्रत भेदसौं, सो चारित व्यौहार ॥ ४८ ॥

चौपई।

बाहर परनति चंचल जोग। अन्तरभाव समल उपयोग।
दोनों किये बढ़ै संसार। रोकै निहचै चारित सार ॥ ४९ ॥
चारित निहचै अरु व्यौहार उभय मुकतिकारन निरधार।
होहि ध्यानतैं दोनों सार। कीजै ध्यान जतन अभ्यास ॥५०॥

१ निष्पाप—पापरहित शुद्ध

उदै देयकरि गिरै, सुगी सविपाक निर्जरा ।
उदै देय विन गिरै, भली अविपाक सुपरकरा ॥
सबके अकाम निर्जरा जग-ग्यांनी सकाम निर्जरा ।
अविपाक सकाम करी तिन्हीं, ग्यान धर्म धरा ॥ ४० ॥

मनहरण ।

रागदोष मोह नाहिं सम्यक सरूपमाहिं, सोई भावमोष आप सुद्ध भावमई है । प्रकृति प्रदेस थिति अनुभाग बंध चार, सर्वथा विनास भये दर्वमोष भई ॥ है परजाय-नै-विचार जीव मोष भयौ सार, दर्वित-नै सदा सिव भई नाहिं नई है । दर्वमोष भावमोष सिद्ध जीव राजत हैं, सो मैं अबै मेरी सुधि ऐसी परनई है ॥ ४१ ॥

भावपुन्य सुभभाव पूजा दान जप तप, भावपाप परिनाम विषय औ कषाय है । दर्व पुन्य साता अठसठ भेद पुग्गलके, दर्वपाप सौ भेद पुग्गल बहुभाय हैं । दर्व भाव पुन्य पाप सुर्ग नर्ककौ मिलाप, सबमौं निराला आप यही जीवराय है । एई षट द्रव्य नव तत्त्व सरधान करौ, राग दोष मोह हरौ मोषकौ उपाय है ॥ ४२ ॥

सोरठा ।

सम्यक दरसन ग्यान, चारित सिवकारन कहे ।
नय व्यवहार प्रवांन, निहचै तिहुँमै आतमा ॥ ४३ ॥

चौपई ।

सम्यक रतनत्रय जियमाहिं ।
निज तजि और दरबमें नाहिं ॥

तातैं तीनौंमें निहंपाप।
सिवकारन यह चेतन आप ॥ ४४ ॥

दोहा।

आप आपमें आपकौं, देखैं दरसन जोय।
जानपना सो ग्यान है, थिरता चारित सोय ॥ ४५ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

जीवादिक भावनिकी सरधा, सो सम्यक निजरूप निहार।
जा बिन मिथ्या ग्यान होत है, जा बिन मिथ्या चारित धार ॥
दुर-नै-कौ परवेस जहां नहिं, संसय विभ्रम मोहनिवार।
सुपरसुरूप जथारथ जानैं, सम्यक ग्यान अनेक प्रकार ॥ ४६ ॥
जो सामान गहैं विसेस बिन, निराकार दरसन परवान।
जो विसेस जानैं अर्थनिकौं, सो आकार ग्यान परधान ॥
संसारी छद्मस्थ जीवकौं, एककाल नहिं दरसन ग्यान।
एक समयमें देखैं जानैं, केवलरूप अनूपम भान ॥ ४७ ॥

दोहा।

असुभ भाव निरवारकै, सुभुपयोग विसतार।
समिति गुपति व्रत भेदसौं, सो चारित व्यौहार ॥ ४८ ॥

चौपई।

बाहर परनति चंचल जोग। अन्तरभाव समल उपयोग।
दोनों किये बढ़ै संसार। रोकैं निहचै चारित सार ॥ ४९ ॥
चारित निहचै अरु व्यौहार उभय मुकतिकारन निरधार।
होहि ध्यानतैं दोनों सार। कीजे ध्यान जतन अभ्यास ॥५०॥

१ निष्पाप—पापरहित शुद्ध

उदै देयकरि खिरै, बुरी सविपाक निर्जरा।
उदै देय विन खिरै, भली अविपाक सुखकरा॥
सबके अकाम निर्जरा जग-ग्याता सकाम निर्जरा।
अविपाक सकाम करी तिन्हीं, ग्यान धर्म धरा॥ ४०॥

मनहरण।

रागदोष मोह नाहिं सम्यक सरूपमाहिं, सोई भावमोष आप सुद्ध भावमई है। प्रकृति प्रदेस थिति अनुभाग बंध चार, सर्वथा विनास भये दर्वमोष भई॥ है परजाय-नै-विचार जीव मोष भयौ सार, दर्वित-नै सदा सिव भई नाहिं नई है। दर्वमोष भावमोष सिद्ध जीव राजत हैं, सो मैं अब मेरी बुधि ऐसी परनई है॥ ४१॥

भावपुन्य सुभभाव पूजा दान जप तप, भावपाप परिनाम विषय औ कषाय है। दर्व पुन्य साता अठसठ भेद पुग्गलके, दर्वपाप सौ भेद पुग्गल बहुभाय है। दर्व भाव पुन्य पाप सुर्ग नर्ककौ मिलाप, सबसौं निराला आप यही जीवराय है। एई षट द्रव्य नव तत्त्व सरधान करौ, राग दोष मोह हरौ मोषकौ उपाय है॥ ४२॥

सोरठा।

सम्यक दरसन ग्यान, चारित सिवकारन कहे।
नय व्यवहार प्रवांन, निहचै निहचै आतमा॥ ४३॥

चौपई।

सम्यक रतनत्रय जियमाहिं।
निज तजि और दरबमैं नाहिं॥

याते तीनोंमें निर्दोष ।
शिवकारन यह चेतन आप ॥ ४४ ॥

दोहा।

आप आपमें आपकों, देखै दरसन जोय ।
जानपना सो ग्यान है, थिरता चारित सोय ॥ ४५ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

जीवादिक भावनिकी सरधा, सो सम्यक निजरूप निहार ।
जा बिन मिथ्या ग्यान होत है, जा बिन मिथ्या चारित धार ॥
दुर-नै-की परवेस जहां नहिं, संसय विभ्रम मोहनिवार ।
सुपरसुरूप जथारथ जानैं, सम्यक ग्यान अनेक प्रकार ॥ ४६ ॥
जो सामान गहै विसेस बिन, निराकार दरसन परधान ।
जो विसेस जानैं अर्थनिकों, सो आकार ग्यान परधान ॥
संसारी छद्मस्थ जीवकों, एककाल नहिं दरसन ग्यान ।
एक समयमें देखै जानैं, केवलरूप अनूपम भान ॥ ४७ ॥

दोहा।

अशुभ भाव निरवारकें, शुभउपयोग विस्तार ।
समिति गुपति व्रत भेदसों, सो चारित व्यौहार ॥ ४८ ॥

चौपाई

बाहर परनति प्रबल जोग, अन्तरभाव समल उपयोग ।
दोनों [illegible] ॥ ४९ ॥
चारित [illegible]
[illegible]

उदै देयकरि खिरै, बुरी सविपाक निर्जरा।
उदै देय विन खिरै, भली अविपाक सुखकरा॥
सबके अकाम निर्जरा जग–ग्याता सकाम निर्जरा।
अविपाक सकाम करी तिन्हौं, ग्यान धरमैं धरा॥ ४०

मनहरण।

रागदोष मोह नाहिं सम्यक सरूपमाहिं, सोई भावमो आप सुद्ध भावमई है। प्रकृति प्रदेस थिति अनुभाग बंध चा सर्वथा विनास भये दर्वमोष भई॥ है परजाय–नै–भि जीव मोष भयौ सार, दर्वित–नै सदा सिव भई नाहिं नई है दर्वमोष भावमोष सिद्ध जीव राजत हैं, सो मैं अब मेरी प्र ऐसी परनई है॥ ४१॥

भावपुन्य सुभभाव पूजा दान जप तप, भावपाप परि नाम विषय औ कषाय है। दर्व पुन्य साता अठसठ भेद पुग लके, दर्वपाप सौ भेद पुग्गल बहुभाय है। दर्व भाव पाप सुर्ग नर्कको मिलाप, सबसौं निराला आप यही [illegible] है। एई षट द्रव्य नव तत्त्व सरधान करौ, राग दोष मोह मोषको उपाय है॥ ४२॥

सोरठा।

सम्यक दरसन ग्यान, चारित सिवकारन कहे।
नय व्यवहार प्रवांन, निहचै निहूंमै आतमा॥ ४३॥

चौपाई।

सम्यक रतनत्रय जियमाहिं।
निज तजि और दरबमैं नाहिं॥

1 कर्मोंका अपना फल देकर झड़ना. 2 आत्मा।

तातैं तीनोंमें निर्हेपाप।
सिवकारन यह चेतन आप ॥ ४४ ॥

दोहा।

आप आपमें आपकों, देखैं दरसन सोय।
जानपना सो ग्यान है, थिरता चारित सोय ॥ ४५ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)।

जीवादिक भावनिकी सरधा, सो सम्यक निजरूप निहार।
जा बिन मिथ्या ग्यान होत है, जा बिन मिथ्या चारित धार॥
दुर-नै-कों परवेस जहां नहिं, संसय विभ्रम मोहनिवार।
सुपरसुरूप जथारथ जानैं, सम्यक ग्यान अनेक प्रकार ॥ ४६ ॥
जो सामान गहैं विसेस बिन, निराकार दरसन परवान।
जो विसेस जानैं अरथनिकों, सो आकार ग्यान परधान॥
संसारी छद्मस्थ जीवकों, एककाल नहि दरसन ग्यान।
एक समयमें देखैं जानैं, केवलरूप अनूपम भान ॥ ४७ ॥

दोहा।

असुभ भाव निरवारकै, सुभुपयोग बिसतार।
समिति गुपति व्रत भेदसों, सो चारित व्योहार ॥ ४८ ॥

चौपई।

बाहर परनति चंचल जोग। अन्तरभाव मसल उपयोग।
दोनों किये बढ़ै संसार। रोकै निहचै चारित सार ॥ ४९ ॥
चारित निहचै अरु व्योहार उभय मुकतिकारन निरधार।
होहि ध्यानतैं दोनों सार। कीजै ध्यान जतन अभ्यास ॥५०॥

१ निष्पाप—पापरहित शुद्ध।

तातैं तीनौंमें निहचै आप ।
सिवकारन यह चेतन आप ॥ ४४ ॥

दोहा।

आप आपमें आपकौं, देखै दरसन सोय ।
जानपना सो ग्यान है, थिरता चारित सोय ॥ ४५ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

जीवादिक भावनिकी सरधा, सो सम्यक निजरूप निहार ।
जा बिन मिथ्या ग्यान होत है, जा बिन मिथ्या चारित धार ॥
दुर-नै-कौं परवेस जहां नहिं, संसय विभ्रम मोहनिवार ।
गुणपरजरूप जथारथ जानैं, सम्यक ग्यान अनेक प्रकार ॥ ४६ ॥
जो सामान गहैं विसेस बिन, निराकार दरसन परवान ।
जो विसेस जानैं अरथनिकौं, सो आकार ग्यान परधान ॥
संसारी छदमस्थ जीवकौं, एककाल नहिं दरसन ग्यान ।
एक समयमैं देखैं जानैं, केवलरूप अनूपम भान ॥ ४७ ॥

दोहा।

असुभ भाव निरवारकै, सुभुपयोग विसतार ।
समिति गुपति व्रत भेदसौं, सो चारित व्यौहार ॥ ४८ ॥

चौपई।

बाहर परनति चंचल जोग । अन्तरभाव ममल उपयोग ।
दोनों किये बढ़ै संसार । रोकें निहचै चारित सार ॥ ४९ ॥
चारित निहचै अरु व्यौहार । उभय मुकतिकारन निरधार ।
होहि ध्यानतें दोनों सार । कीजे ध्यान जतन अभ्यास ॥

उदै देयकरि खिरै, पूरी सविपाक निर्जरा ।
उदै देय बिन खिरै, सोही अविपाक सुगकरा ॥
सबके अकाम निर्जरा जग–ग्यांनी सकाम निर्जरा ।
अविपाक सकाम करी तिन्हीं, ग्यान घटमें धरा ॥ ४० ॥

मनहरण ।

रागदोष मोह नाहिं सम्यक सरूपमाहिं, सोई भावमोष आप सुद्ध भावमई है । प्रकृति प्रदेस थिति अनुभाग बंध चार, सर्वथा बिनास भये दर्वमोष भई ॥ है परजाय–नै–विचार जीव मोष भयौ सार, दर्वित–नै सदा सिव भई नाहिं नई है । दर्वमोष भावमोष सिद्ध जीव राजत हैं, सो मैं अब मेरी बुधि ऐसी परनई है ॥ ४१ ॥

भावपुन्य सुभभाव पूजा दान जप तप, भावपाप परिनाम विषय औ कषाय है । दर्व पुन्य साता अठसठ भेद पुग्गलके, दर्वपाप सौ भेद पुग्गल वहुभाय है । दर्व भाव पुन्य पाप सुरै नर्कको मिलाप, सबसों निराला आप यही जीवराय है । एई षट द्रव्य नव तत्त्व सरधान करौ, राग दोष मोह हरौ मोषको उपाय है ॥ ४२ ॥

सोरठा ।

सम्यक दरसन ग्यान, चारित सिवकारन कहे ।
नय व्यवहार प्रवांन, निहचै निहूँमें आतमा ॥ ४३ ॥

चौपई ।

सम्यक रतनत्रय जियमाहिं ।
निज तजि और दर्वमें नाहि ॥

तातैं तीनौंमें निहचैपाप ।
सिवकारन यह चेतन आप ॥ ४४ ॥

दोहा ।

आप आपमैं आपकौं, देखैं दरसन जोय ।
जानपना सो ग्यान है, थिरता चारित सोय ॥ ४५ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

जीवादिक भावनिकी सरधा, सो सम्यक निजरूप निहार ।
जा बिन मिथ्या ग्यान होत है, जा बिन मिथ्या चारित धार ॥
दुर-नै-कौ परवेस जहां नहिं, संसय विभ्रम मोहनिवार ।
सुपरसुरूप जथारथ जानैं, सम्यक ग्यान अनेक प्रकार ॥ ४६ ॥
जो सामान गहै विसेस विन, निराकार दरसन परवान ।
जो विसेस जानैं अर्थनिकौं, सो आकार ग्यान परधान ॥
संसारी छद्मस्थ जीवकौं, एककाल नहिं दरसन ग्यान ।
एक समयमैं देखैं जानैं, केवलरूप अनूपम भान ॥ ४७ ॥

दोहा ।

असुभ भाव निरवारकै, सुभउपयोग विसतार ।
समिति गुपति व्रत भेदसौं, सो चारित व्यौहार ॥ ४८ ॥

चौपई ।

बाहर परनति चंचल जोग । अन्तरभाव समल उपयोग ।
दोनों किये बंद सम्हार । सो है निहचै चारित सार ॥ ४९ ॥
चारित निहचै अरु व्यौहार उभय मुकतिकारन निरधार ।
होहि ध्यानतैं दोनों सार । कीजे ध्यान जतन अभ्यास ॥ ५० ॥

चार 'णमो लोए' तुम जानौ, पंच 'सव्वसाहूणं' मान।
पंच परमपद ऐतिम अच्छर, सुखकारी ध्यावौ दिनरात॥५४॥

चौपई

चार घातिया कर्म निरास।
ग्यान दरस सुख बल परकास॥
परमौदारिक तन गुनवंत।
ध्याऊं सुद्ध सदा अरहंत॥ ५५॥
करम काय नासे सब थोक।
देखैं जानैं लोकालोक॥
लोकसिखर थिर पुरुषाकार।
ध्याऊं सिद्ध सुखी अविकार॥ ५६॥
दरसन ग्यान प्रधान विचार।
व्रत तप वीरज पंचाचार॥
धरैं धरावैं औरनि पास।
ध्याऊं आचारज सुखरास॥ ५७॥
सम्यकरतनत्रै गुनलीन।
सदा धरम उपदेस प्रवीन॥
साधुनिमैं मुख करुनाधार।
ध्याऊं उपाध्याय हितकार॥ ५८॥
दरसन ग्यान सुगुन भंडार।
परम दिगंबरमुद्राधार॥
साधैं सिवमारग आचार।
ध्याऊं साधु सुगुनदातार॥ ५९॥

१ मुख्य प्रधान

चार 'णमो लोए' तुम जानौ, पंच 'सव्वसाहूणं' भ्रात ।
पंच परमपद पैंतिस अच्छर, सुखकारी ध्यावौ दिनरात ॥५४॥

चौपई

चार घातिया कर्म निवास ।
ग्यान दरस सुख बल परकास ॥
परमौदारिक तन गुनवंत ।
ध्याऊं सुद्ध सदा अरहंत ॥ ५५ ॥
करम काय नासे सब थोक ।
देखैं जानैं लोकालोक ॥
लोक सिखर थिर पुरुषाकार ।
ध्याऊं सिद्ध सुगुन अविकार ॥ ५६ ॥
दरसन ग्यान प्रधान विचार ।
व्रत तप वीरज पंचाचार ॥
धरैं धरावैं औरनि पास ।
ध्याऊं आचारज सुखरास ॥ ५७ ॥
सम्यकरतनत्रै गुनलीन ।
सदा धरम उपदेश प्रवीन ॥
साधुनिमैं मुख[1] करुनाधार ।
ध्याऊं उपाध्याय हितकार ॥ ५८ ॥
दरसन ग्यान सुगुन भंडार ।
परम दिगंबरमुद्राधार ॥
साधै सिवमारग आचार ।
ध्याऊं साधु सुगुनदातार ॥ ५९ ॥

1 मुख्य प्रधान

मनहरण ।

इष्ट औ अनिष्ट जे पदारथ जगतमाहिं, तिनैं देखि राग दोष मोह नाहिं कीजियें । विपसेती उचटाय त्याग दीजिये कषाय, चाह–दाह धोय एक दमामाहिं भीजियें ॥ तत्त्वग्यानकौं सँभार समता सरूप धार, जीनके परीसह आनन्दसुधा पीजियें। मनकौं सुथमि आन नाना विधि ध्यान ठान, अपनी सुवास आपमाहिं आप लीजियें ॥ ५१ ॥

अडिल्ल छन्द ।

पैंतिम सोलैं षट पन चव जुग एक हैं ।
सात जाप ये अच्छर और अनेक हैं ॥
पंच परमपदरूप सदा मन ध्याइयें ।
रिद्धिसिद्धि है कहा मुकति पद पाइयें ॥ ५२ ॥

मनहर ।

'णमो अरहंताणं' सात 'णमो सिद्धाणं' पांच 'णमो आयरियाणं' सात वस्न भाव रे । 'णमो उवज्झायाणं' सात 'णमो लोए ' ए चार, 'सव्वसाहूणं' पंच पैंतिस लव लाव रे ॥ 'अरहंत सिद्ध आचारज उवझाय साध ' सुभ सोलैं ' अरहंतासिद्ध' षट् ध्याव रे । 'असिआउसा' ए पंच 'अरहंत' चार 'सिद्ध,' दोय 'ओं' एक सरव अच्छरकौ राव रे ॥ ५३ ॥

कवित्त ([illegible] मात्रा) ।

सात 'णमो अरहंताणं' अरु, पन 'णमो सिद्धाणं' ध्यान ।
सात 'णमो आयरियाणं' अरु 'णमो उवज्झायाणं' सात ॥

चार 'णमो लोए' तुम जानो, पंच 'सव्वसाहूणं' भ्रात।
पंच परमपद अंतिम अच्छर, सुखकारी ध्यावौं दिनरात॥५४॥

चौपई

चार घातिया कर्म निवास।
ग्यान दरस सुख बल परकास॥
परमौदारिक तन गुनवंत।
ध्याऊं सुद्ध सदा अरहंत॥ ५५॥
करम काय नासे सब थोक।
देखैं जानैं लोकालोक॥
लोक सिखर थिर पुरुषाकार।
ध्याऊं सिद्ध सुखी अविकार॥ ५६॥
दरसन ग्यान प्रधान विचार।
व्रत तप वीरज पंचाचार॥
धरैं धरावें औरनि पास।
ध्याऊं आचारज सुखरास॥ ५७॥
सम्यकरतनत्रै गुनलीन।
सदा धरम उपदेश प्रवीन॥
साधुनिमैं मुख्य[1] करुनाधार।
ध्याऊं उपाध्याय हितकार॥ ५८॥
दरसन ग्यान सुगुन भंडार।
परम दिगंबरमुद्राधार॥
साधे सिवमारग आचार।
ध्याऊं साधु सुगुनदातार॥ ५९॥

१ मुख्य प्रधान

मनहरण।

इष्ट औ अनिष्ट जे पदारथ जगतमाहिं, तिनैं देखि राग दोष मोह नाहिं कीजियै। विषमैती उनटाय त्याग दीजिये कषाय, चाह-दाह धोय एक दसामाहिं भीजियै॥ तत्त्वग्यान-कौं संभार ममता सरूप धार, जीतकै परीसह आनन्दसुधा पीजियै। मनकौं सुथिर आन नाना विधि ध्यान ठान, अपनी सुथान आपमाहिं आप लीजियै॥ ५१॥

अडिल्ल छन्द।

पैंतिस सोलै पद पन चव जुग एक हैं।
सात जाप ये अच्छर और अनेक हैं॥
पंच परमपदरूप सदा मन ध्याइयैं।
रिद्धिसिद्धि है कहा मुकति पद पाइयै॥ ५२॥

मनहर।

'णमो अरहंताणं' सात 'णमो सिद्धाणं' पांच 'णमो आयरियाणं' सात वरन भाव रे। 'णमो उवज्झायाणं' सात 'णमो लोए' ए चार, 'सव्वसाहूणं' पंच पैंतिस लव लाव रे॥ 'अरहंत सिद्ध आचारज उवझाय साध' सुम सोलै 'अरहंतासिद्ध' पद ध्याव रे। 'असिआउसा' ए पंच 'अरहंत' चार 'सिद्ध,' दोय 'ओं' एक मन्त्र अच्छरकौ राव रे॥ ५३॥

कवित्त ([illegible] मात्रा।)

सात 'णमो अरहंताणं' अरु, पंच 'णमो सिद्धाणं' ख्यात।
सात 'णमो आयरियाणं' अरु, 'णमो उवज्झायाणं' सात॥

चार 'णमो लोए' तुम जानौं, पंच 'सव्वसाहूणं' भ्रात ।
पंच परमपद पैंनिम अच्छर, सुगुरकारी ध्यावौं दिनरात ॥५४॥

चौपई

चार घातिया कर्म निवास ।
ग्यान दरस सुख बल परकास ॥
परमौदारिक तन गुनवंत ।
ध्याऊं सुद्ध सदा अरहंत ॥ ५५ ॥
करम काय नासे सब थोक ।
देखैं जानैं लोकालोक ॥
लोक सिखर थिर पुरुषाकार ।
ध्याऊं सिद्ध गुणी अविकार ॥ ५६ ॥
दरसन ग्यान प्रधान विचार ।
व्रत तप वीरज पंचाचार ॥
धरैं धरावैं औगनि पास ।
ध्याऊं आचारज गुनरास ॥ ५७ ॥
सम्यकरतनत्रै गुनलीन ।
सदा धरम उपदेश प्रवीन ॥
साधुनिमैं हैं श्रुत कल्नाधार ।
ध्याऊं उपाध्याय हितकार ॥ ५८ ॥
दरसन ग्यान सुगुन भंडार ।
परम दिगंबरमुद्राधार ॥
साधैं सिवमारग आचार ।
ध्याऊं साधु सुगुनदातार ।

तन बैठा आसन माँहि ।
मौन धारि चिन्ता सब छाँडि ॥
थिर ह्वै मगन आपमें आप ।
यह उत्कृष्ट ध्यान निहपाप ॥ ६० ॥
जबलौं मुकति चहै मुनिराज ।
तबलौं नहिं पावै शिवराज ॥
सब चिंता तज एकमरूप ।
सोई निहचै ध्यान अनूप ॥ ६१ ॥

दोहा ।

खाना चलना सोवना, मिलना वचन विलास ।
ज्यौं ज्यौं पंच घटाइये, त्यौं त्यौं ध्यान प्रकास ॥ ६२ ॥

मत्तगयन्द सवैया ।

आगमग्यान सदा व्रतवान, तपै तप जान तिहूं गुनपूरा ।
ध्यान महारथ धारन कारन, होय धुरंधर सो नर सूरा ॥
ध्यान अभ्यास लहै शिववास, बिना, भव पास परै दुःख भूरा
कर्म महादिढ सैल बडे बहु, ध्यान सुवज्र करै चकचूरा ॥ ६३ ॥

मनहरण ।

नेमिचंद आचारज कहैं मैं अलपश्रुत, कीनौं दर्वसंग्रहकौं सोधौ मुनिराज जी । दूषनरहित गुनभूषनसहित तुम, श्रुत सब पूरन ह्वौ चूरन अकाज जी ॥ 'द्यानत' तनक बुधि तापरि बखान करी, बालरीति धरी ढकि लीजौ गुन साज जी । कुकथाके नासनिकौं बुद्धिके प्रकासनिकौं, भाषा यह ग्रन्थ भयौ सम्यक समाज जी ॥ ६४ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथ ।